चित चकमक लागै नहीं

प्रवचन-क्रम

1. जीवन की खोज..2
2. अविचार..12
3. स्वतंत्रता और आत्म-क्रांति...25
4. विचार..38
5. विचारः एक आत्मानुभूति...49
6. निर्विचार..61

चित चकमक लागै नहीं
पहला प्रवचन

जीवन की खोज

मेरे प्रिय आत्मन्!
आने वाले तीन दिनों में जीवन की खोज के संबंध में थोड़ी सी बात मैं आपसे कहूंगा।
इससे पहले कि कल सुबह से मैं जीवन की खोज के संबंध में कुछ कहूं, प्रारंभिक रूप से यह कहना जरूरी है कि जिसे हम जीवन समझते हैं उसे जीवन समझने का कोई भी कारण नहीं है। और जब तक यह स्पष्ट न हो जाए, और जब तक हमारे हृदय के समक्ष यह बात सुनिश्चित न हो जाए कि हम जिसे जीवन समझ रहे हैं वह जीवन नहीं है तब तक सत्य जीवन की खोज भी प्रारंभ नहीं हो सकती। अंधकार को ही कोई प्रकाश समझ ले तो प्रकाश की खोज नहीं होगी और मृत्यु को ही कोई जीवन समझ ले तो जीवन से वंचित रह जाएगा। हम क्या समझे बैठे हुए हैं, अगर वह गलत है, तो हमारे सारे जीवन का फल भी गलत ही होगा। हमारी समझ पर निर्भर करेगा कि हमारी खोज क्या होगी?
सबसे पहली बात जो मैं निवेदन करना चाहता हूं वह ये बहुत कम लोगों को जीवन उपलब्ध होता है। जन्म तो सभी लोगों को उपलब्ध होता है। और अधिकांश लोग जन्म को ही जीवन समझ लेते हैं और मूल्य बढ़ जाता है। जिसे हम जीवन जानते हैं, वो केवल एक जीवन को पाने का अवसर है पाने का या खोने का। क्योंकि उसके द्वारा जीवन पाया भी जा सकता है और जीवन खोया भी जा सकता है। जिसे हम जीवन जानते हैं वह केवल एक अवसर है, वो एक संभावना है, वो एक बीज है। जिसमें से कुछ विकसित हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। यह भी हो सकता है कि बीज व्यर्थ पड़ा रह जाए, उसमें से कोई अंकुर न निकले, कोई फूल न लगे, कोई फल न आए। दोनों बातों की संभावनाएं हैं और जैसा आज तक हुआ है अधिक लोगों का जीवन बीच व्यर्थ ही पड़ा रह जाता है। बहुत कम लोगों के जीवन में अंकुर आते हैं, फूल आते हैं और सुगंध आती है। ऐसे थोड़े से लोगों को हम पूजते हैं उनका स्मरण करते हैं। लेकिन एक बात का स्मरण नहीं करते कि ठीक वैसा ही बीज हमें भी उपलब्ध हुआ है और ठीक वैसी ही सुगंध को हम भी उपलब्ध हो सकते हैं। महावीर, बुद्ध, कृष्ण और क्राइस्ट को देख कर जिसके मन में ये अपमान का बोध पैदा न होता हो कि मेरे भीतर भी ठीक वैसा ही बीज है और मैं भी ठीक उनके ही जीवन जैसे जीवन को उपलब्ध हो सकता हूं, उसकी सब पूजा व्यर्थ है और सब ढोंग है और पाखंड है। एक बात इस पीड़ा से बचने के लिए हमने कृष्ण को, बुद्ध को, महावीर को भगवान बना रखा है। इस पीड़ा से बचने के लिए अगर वे भी मनुष्य हों तो फिर हमें अपने मनुष्य होने पर पश्चात्ताप शुरू हो जाएगा। यदि वे भी हमारे जैसे मनुष्य हैं तो फिर हमें बचने के लिए कोई जगह, कोई गुंजाइश नहीं रह जाएगी। इसलिए बचने के लिए अपमान से, पीड़ा से दुख से, उन्हें भगवान, ईश्वर का पुत्र, तीर्थंकर और न मालूम क्या-क्या नासमझियों की बातें हम लोगों पे थोपते हैं। हमारे जैसे ही सारे मनुष्य हैं, सारे मनुष्य थे लेकिन कुछ मनुष्य-बीज ठीक से विकसित होते हैं और उनके भीतर से परमात्मा का प्रकाश प्रकट होने लगता है। और अधिक बीज विकसित नहीं हो पाते। धर्म का यदि कोई भी संबंध इसी बात से कि सारे बीज जो होने को थे वो हो जाएं। जो उनके भीतर छिपा है, वह प्रकट हो जाए। और उसके लिए सबसे पहले आधारभूत जरूरी बात जो आज मैं आपसे कह रहा हूं वह यह है कि हमें हमें यह स्मरण न आए कि हम जिस दिशा में चल रहे हैं और जो कर रहे हैं वो एकदम गलत है तब तक कोई क्रांति, कोई परिवर्तन, कोई मोक्ष संभव नहीं होगा? ये करीब-करीब जिसे हम जीवन जानते हैं रोज धीरे-धीरे मरते जाने से ज्यादा नहीं है। और लंबी मृत्यु को जीवन नहीं कहा जा सकता।
सत्तर वर्ष में एक आदमी मरता है, ये सत्तर वर्ष मरने की क्रिया चलती है। सौ वर्षों में कोई मरता होगा, कोई पचास वर्ष में भी मरता होगा। ये मरने की लंबी क्रिया को भी हम जीवन समझ कर चुप बैठे रह जाते हैं। कल आप जितने थे उससे आज एक दिन कम हो गए हैं। कल और एक दिन कम होगा। जिसे आप उम्र का बढ़ना जानते हैं, वह उम्र का घटना है। और जिन जन्मजनों को आप जन्म दिवस मनाते

हैं, वे केवल मृत्यु के करीब आने के पत्थर हैं। और सब तरफ से दौड़ के अन्त में पाया जाता है कि मौत में पहुंच जाते हैं। इसी की तरफ दौड़ते हैं और कुछ नहीं करते हैं और हजार तरह के उपाय करते हैं हजार तरह की व्यवस्थाएं करते हैं। ये सारी दौड़-धूप मृत्यु से बचने की व्यवस्था से ज्यादा नहीं है कोई धन इकट्ठा करता हो, यश इकट्ठा करता हो, पद इकट्ठा करता हो, शक्ति बढ़ाता हो सारी चेष्टाएं एक बात से बचने के लिए हैं कि वो जो कल मौत आएगी उसके खिलाफ मैं कोई सुरक्षा, कोई सिक्योरिटी की व्यवस्था कर लूं, लेकिन ये सब व्यवस्थाएं टूट जाती हैं और मौत आ जाती है।
एक छोटी सी कहानी मुझे स्मरण आती है। धनुष्ट ने एक रात एक स्वप्न देखा। स्वप्न देखा कि वो एक वृक्ष के नीचे एक घोड़े के पास खड़ा है और किसी काली छाया ने आकर उसके कंधे पर हाथ रखा। लौट कर उसने देखा तो वह घबड़ा गया। उस छाया ने कहाः मैं मृत्यु हूं और कल तैयार रहना और ठीक जगह पर पहुंच जाना, मैं तुम्हें लेने को आ रही हूं। उसकी नींद टूट गई, सपना टूट गया। वह घबड़ा गया सुबह होते ही उसने राज्य के बड़े से बड़े ज्योतिषियों को बुलाया। बड़े से बड़े स्वप्न को जानने वाले विद्वानों को बुलाया। और उनसे पूछा, इस स्वप्न का इस लक्षण का क्या अर्थ है? रात मैंने एक काली छाया देखी है जिसने मेरे कंधे पर हाथ रख कर कहाः मैं मौत हूं, कल तैयार रहना और ठीक जगह पर पहुंच जाना। मैं तुम्हें लेने को आ रही हूं। ज्यादा समय भी नहीं था क्योंकि कल सांझ सूरज होते-होते मौत आ जाएगी। ज्योतिषियों ने कहा आपके पास ज्यादा समय का विचार का मौका भी नहीं है। आपके पास कोई तेज से तेज घोड़ा हो तो उसे ले-लें और भागने की कोशिश करें, जितना दूर निकल जाएं उतना बेहतर है। सिवाय इसके कोई उपाय हो भी नहीं सकता था। मनुष्य की बुद्धि और क्या करती। यही एक उपाय हो सकता था उस महल से उस राजधानी से दूर से दूर निकला जाए बचने का और क्या उपाय हो सकता था, आपसे भी पूछता कोई तो क्या करते? या मुझसे भी पूछते तो मैं क्या बताता? उन ज्योतिषियों ने ठीक ही बताया। मनुष्य की बुद्धि और ज्यादा दूर दौड़ती भी नहीं है। खोज भी नहीं पाती, सीधी सी बात है--भागें और बचें मौत से।
तेज घोड़े की उस राजा के पास कमी न थी। तेज से तेज घोड़े थे। उसने एक तेज घोड़ा बुलाया, बैठे और भागना शुरू किया। घोड़ा बहुत तेज था और राजा निश्चिंत मन में धीरे-धीरे होने लगा घोड़े की तेज चाल को देख कर यह आत्मविश्वास आना स्वाभाविक था कि बच जाऊंगा, निकल जाऊंगा, दूर हो जाऊंगा, धीरे-धीरे राजधानी दूर छूटने लगी, राज्य दूर छूटने लगा, नगर और दूर छूटने लगे, घोड़ा भागता जाता था, न तो उस दिन राजा रूका, न उसने भोजन लिया, न उसने पानी लिया, कौन रूकेगा, कौन भोजन लेगा, कौन पानी पीएगा जिसके पीछे मौत पड़ी हो? न उसने घोड़े को ठहराया, न उसके पानी की व्यवस्था की। उस दिन तो दूर से दूर निकल जाना जरूरी था सुबह-दोपहर हो गई। राजा काफी दूर निकल आया था वो बहुत प्रसन्न था दोपहर तक तो वह उदास था, दोपहर के बाद वह गीत भी गुनगुनाने लगा। थोड़ा सा खयाल आ रहा था कि वो काफी दूर निकल आया है। सांझ होते-होते वो सैंकड़ों मील दूर निकल गया था और जब सूरज डूब रहा था तो उसने जाके एक आम के बगीचे में जाकर अपने घोड़े को बांधा और एक झाड़ के नीचे खड़ा हुआ। फिर उठा वह परमात्मा को धन्यवाद देने को ही था, कि अब तो काफी दूर निकल आया हूं, कि वही पंजा जो रात उसने देखा था उसने कंधे पर आकर हाथ रखा। उसने गौर से देखा कि वही काली छाया थी। उस काली छाया ने कहा कि मैं बहुत परेशान थी कि इतनी दूर तुम आ भी पाओगे या नहीं! क्योंकि यही जगह तुम्हारी मौत होने को थी। तो मैं हैरान थी कि ये कैसे संभव होगा? इतना फासला तुम पार कर सकोगे या नहीं कर सकोगे? लेकिन घोड़ा सच में तेज था। और तुम ठीक से दौड़े और ठीक समय पर मौजूद हो गए।
हम दौड़ें कैसे भी, पर एक दिन यह होगा और सपना आपने देखा हो या न देखा हो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है और यह होगा। एक दिन मौत आपको ठीक जगह पर मिल जाएगी। जहां उसको मिलना है। तो यह हो सकता है कि हमारे भागने की दिशाएं अलग हों, हमारे रास्ते अलग हों हमारे घोड़ों की चाल अलग हो, यह हो सकता है। लेकिन अंतिम बात में कोई फर्क नहीं पड़ेगा। क्योंकि झाड़ के नीचे कोई न कोई एक दिन कंधे पर हाथ रखा जाएगा और तब आप पाएंगे कि जिससे आप भाग रहे थे, उससे

मुलाकात हो गई। और उस दिन आप घबड़ाएंगे कि जिससे बचने को आप भाग रहे थे वस्तुतः आप उसी की तरफ भाग रहे थे। मौत से बचने का कोई उपाय नहीं है, हम कहीं भी भागें, हम मौत की तरफ ही भागते हैं। भागना मात्र मौत में ले जाता है। जो भी भागेगा वह मौत में पहुंच जाएगा। तो ये हो सकता है कि दरिद्र बहुत धीमे-धीमे भागेगा, उसके पास घोड़ा नहीं, बिना घोड़े के भागेगा। और समृद्ध बहुत बड़े घोड़े पर भागेगा और वास्तव में वह बहुत तेज चाल वाले घोड़े पर भागेंगे, बिना घोड़े के लोग भी वहां पहुंच जाते हैं और घोड़े वाले भी वहां पहुंच जाते हैं। उपाय क्या है, रास्ता क्या है, करें क्या? और पहली बात जो मैं आपसे कहना चाहता हूं कि जो भी आप कर रहे हैं वह सब आप को मौत में ले जाएगा और ये कोई चौंकाने वाली बात नहीं है आज से पहले जो भी किया गया है वह सब मौत में ले जाया गया है थोड़े से लोग मौत से बचे हैं और उन्होंने जो किया है वह आप बिल्कुल भी नहीं कर रहे हैं थोड़े से लोग मनुष्य-जाति के इतिहास में मौत से बचे हैं और उन्होंने जो किया है वह आप बिल्कुल भी नहीं कर रहे हैं। इसलिए आप जो भी तैयारी कर रहे हैं वह मौत की तैयारी है और चाहे वह प्रीतिकर लगे, चाहे अप्रीतिकर लगे, तथ्य और सत्य यही है कि हमारी सबकी तैयारी मौत की तैयारी है। इन तीन दिनों में मैं आपसे निवेदन करना चाहूंगा कि मौत की तैयारी के क्या लक्षण हैं? और जीवन की तैयारी कैसे हो सकती है? हो सकता है आपके भीतर भी जीवन को जानने की और पाने की आकांक्षा हो। वस्तुतः ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जिसके भीतर जीवन को पाने की आकांक्षा न हो। लेकिन फिर भी कुछ पागलपन है, कोई बड़ा पागलपन है। कोई बहुत गहरा पागलपन है। जिसमें पूरी मनुष्य-जाति ग्रसित है नया बच्चा आता है उसी पागलपन में ग्रसित हो जाता है शायद यह स्वाभाविक भी है। नया बच्चा दीक्षित न हो तो हमें पागल मालूम पड़ेगा। माना कि जिस दिन घर छोड़ते हैं उन्हें लोग पागल समझते हैं और बुद्ध जिस दिन घर से भागते हैं उस दिन वे भी पागल समझे जाते हैं और क्राइस्ट को भी पागल समझा जाता है। पूरी मनुष्य-जाति पागल है। इसलिए जब भी कोई ठीक आदमी पैदा होता है, तो पागल समझा जाता है।
एक और छोटी कहानी कहूं उससे मेरी बात शायद समझ में आए।
एक गांव में ऐसा हुआ कि एक दिन सुबह-सुबह एक बूढ़ी औरत आई और उसने आके
उस गांव के कुएं में कुछ डाल दिया और कहा कि जो भी इस कुएं का पानी पीएगा पागल हो जाएगा। गांव में दो ही कुएं थे। एक तो गांव का कुआं था। एक राजा के महल का कुआं था। शाम तक मजबूरी थी, सारा गांव पागल हो गया पानी पीना भी पड़ा। सिर्फ राजा-रानी व वजीर तीन लोग जिन्होंने उस कुएं का पानी नहीं पीया वे बच गए पागल नहीं हुए पूरा गांव सांझ होते-होते पागल हो गया सारे गांव में एक अफवाह उड़ी कि मालूम होता है कि राजा का दिमाग खराब हो गया यह बिल्कुल स्वाभाविक था क्योंकि जब पूरा गांव पागल हो गया हो तो वहां एक आदमी जो पागल नहीं है पागल मालूम पड़ेगा। सीधा सा गणित है वे सारे लोग बड़े चिंतित और परेशान हो गए। उनमें जो विचारशील थे और पागलों में बहुत विचारशील लोग होते हैं। इसलिए पागल और विचारशील में बहुत कम फासला होता है। विचारशील अक्सर पागल हो जाते हैं। और पागल अक्सर विचार करने लगते हैं। उन पागलों में कुछ विचारशील थे, कुछ नेता थे। उन सबने इकट्ठे होकर सोचा कि अब क्या किया जाए? राजा को बिना बदले तो सब गड़बड़ हो जाएगाअ क्योंकि राजा पागल हुआ तो कैसे चलेगा?
वे सब राजमहल गए सांझ होते-होते राजमहल के बाहर इकट्ठे हो गए और उन्होंने नारा लगाया कि राजा को बदले बिना चल नहीं सकता। राजा पागल हो गया है, वजीर पागल है, रानी पागल है। राजा उसका वजीर उसकी रानी ऊपर महल पर खड़े होकर विचार करने लगे कि अब क्या करें। उनके सिपाही भी पागल हो गए थे। उनके नौकर भी पागल हो गए थे। राजा ने वजीर से पूछा कि कुछ सोचो अब हम क्या करें उसने कहा कि सिवाय इसके कि हम उस कुएं का पानी जल्दी पी लें इसके सिवा कोई और उपाय नहीं है। उन तीनों ने लोगों से कहा तुम ठहरो हम इलाज कर दिए देते हैं, अपने पागलपन का। वो गए उन्होंने उस कुएं का पानी पी लिया। उस गांव में बड़ी खुशी मनाई गई, लोग नाचे और गीत गाए कि राजा का दिमाग ठीक हो गया। मनुष्य-जाति किसी बहुत गहरे बुनियादी पागलपन से ग्रसित है। कोई बहुत बड़ी रात, कोई बहुत बड़ी विक्षिप्तता हमारे कानों को पकड़े है। हम नये बच्चों

को उसमें दीक्षित कर देते हैं। जो बच्चे इंकार करेंगे वो विद्रोही मालूम पड़ेंगे। जो बच्चे उस दीक्षा से इंकार करेंगे, वे पागल मालूम पड़ेंगे। उनको हम जबरदस्ती ठोंक-पीट कर लाएंगे उसी रास्ते पर कि वे पागल हो जाएं। इसलिए दुनिया में स्वस्थ होना बड़ी खतरनाक बात है और जो आदमी अस्वस्थ होता है उसे स्वस्थ होने के लिए बड़ा मूल्य चुकाना पड़ता है। किसी को गोली खानी पड़ती है, किसी को जहर पीना पड़ता है, किसी को सूली पर लटक जाना पड़ता है। पागलों की दुनिया में भी स्वस्थ आदमी बरदाश्त नहीं किए जाते। इन पागलों की दुनिया में जो जितना बड़ा पागल हो उतना प्रीतिकर मालूम पड़ता है। क्योंकि वह अपना मालूम पड़ता है। ठीक उन्हीं रास्तों पर चलता मालूम होता है, जिन पर हम चल रहे हैं। तो ऐसे तो मैं जो आपसे कहूंगा इस मनुष्य-जाति को पकड़ी हुई जो गहरी पागलपन की स्थिति है उससे छुटकारे का क्या मार्ग है और उन्हीं में भी खोजते हैं कोई मार्ग तो मृत्यु उसका फल है और कुछ भी करें अंततः मौत पकड़ लेगी। और ये भी जरूरी नहीं है कि बहुत दिन बाद मौत पकड़ लेगी। कल पकड़ सकती है, आज पकड़ सकती है, अभी पकड़ सकती है। आज की रात एक तो आपसे यह कहना चाहता हूं कि इस पर थोड़ा सोचेंगे, इस पर थोड़ा विचार करेंगे कि आप जो भी कर रहे हैं अगर उससे मृत्यु ही निकलती है तो आपके करने की सार्थकता क्या है? आप जो भी कर रहे हैं अगर उससे अमृत की ओर आपके चरण नहीं पड़ते हैं, अगर अमृत की ओर आपकी आंखें नहीं खुलती हैं। अगर उस दिशा में आपके जीवन की गति नहीं होती है जहां मृत्यु नहीं है तो उसकी उपयोगिता क्या है? उसका कितनी दूर तक अर्थ है और क्या प्रयोजन है? फिर जीवन एक अवसर है और जितने क्षण हम खो देते हैं उन्हें वापस पाने का कोई भी उपाय नहीं है। और जीवन एक अवसर है उसे हम किसी भी भांति किसी भी रूप में परिवर्तित कर सकते हैं। जो भी हम उसके साथ करते हैं जीवन परिवर्तित हो जाता है। कुछ लोग उसे संपत्ति में परिवर्तित कर लेते हैं। जीवन भर, जीवन के सारे अवसर को, सारी शक्ति को संपत्ति में परिवर्तित कर लेते हैं लेकिन मौत जब सामने खड़ी होती है संपत्ति व्यर्थ हो जाती है। कुछ लोग जीवन भर सांग करके जीवन के अवसर को यश में कीर्ति में परिवर्तित कर लेते हैं। यश होता है, कीर्ति होती है, अहंकार की तृप्ति होती है लेकिन मौत जब सामने खड़ी होती है अहंकार और यश और कीर्ति सब व्यर्थ हो जाते हैं।
कसौटी क्या है कि आपका जीवन व्यर्थ नहीं गया? कसौटी एक ही है कि मौत जब सामने खड़ी हो तो जो आपने जीवन में कमाया हो वह व्यर्थ न हो जाए। आपने जीवन के अवसर को जिस चीज में परिवर्तित किया हो, सारे जीवन को जिस दांव पर लगाया हो जब मौत सामने खड़ी हो तो वह व्यर्थ न हो जाए, उसकी सार्थकता बनी रहे। मृत्यु के समक्ष जो सार्थक है, वही वस्तुतः सार्थक है, शेष सब व्यर्थ है। दुबारा दोहराता हूं मृत्यु के समक्ष जो सार्थक है वही सार्थक है, शेष सब व्यर्थ है ये बहुत कम लोगों के स्मरण में है ये कसौटी, ये मूल्यांकन, ये दृष्टि बहुत कम लोगों के समक्ष है। आपके समक्ष है या नहीं इसे सोचने का निवेदन करता हूं। इसे थोड़ा विचार करेंगे कि मैं जीवन भर दौड़ कर जो भी इकट्ठा कर लूंगा, जो भी, चाहे पांडित्य कर लूंगा। चाहे धन इकट्ठा कर लूंगा, चाहे बहुत उपवास करके तपस्याएं इकट्ठी कर लूंगा या बहुत यश कमा लूंगा, या कुछ किताबें लिख लूंगा, या कुछ चित्र बना लूंगा, या कुछ गीत गा लूंगा लेकिन अंततः जब मेरा सारा जीवन अंतिम कसौटी पर खड़ा होगा तो मृत्यु के समक्ष इनकी कोई सार्थकता होगी या नहीं? अगर नहीं होगी तो आज ही सचेत हो जाना उचित है और उस दिशा में संलग्न हो जाना उचित है कि मैं कुछ ऐसी संपदा भी खड़ी कर सकूं और कोई ऐसी शक्ति भी निर्मित कर सकूं और प्राणों के भीतर कोई ऐसी ऊर्जा को जन्म दे सकूं कि जब मौत समक्ष हो तो मेरे भीतर कुछ हो जो मौत से बच जाता हो। मौत जिसे नष्ट न कर पाती हो कि ये हो सकता है। अगर यह नहीं हो सकता तो सब धर्म बकवास हैं, व्यर्थ हैं।
यह हुआ है, यह आज भी हो सकता है। और हरेक के जीवन में हो सकता है लेकिन
ये आसमान से टपक कर नहीं होता और न ही ये दान में मिलता है और न ही इसकी चोरी की जा सकती है और न ही किसी गुरू के चरणों में बैठ कर इसको मुफ्त में पाया जा सकता है। ये किसी और से नहीं पाया जा सकता, इसे तो जन्माया जा सकता है, इसका तो सृजन किया जा सकता है। इसे तो खुद अपने श्रम और अपने जीवन और

अपने संकल्प और अपनी सारी शक्ति को लगा कर निर्मित किया जा सकता है। लेकिन एक निर्माण की दिशा में कदम नहीं उठेंगे तब तक जैसे हम जिएं हैं अगर वो हमें ठीक-ठीक मालूम पड़ता हो तब तक इस दिशा में कदम नहीं उठ सकते। तब तक जब तक कि हम जो कर रहे हैं वह हमें बिल्कुल ठीक-ठीक मालूम पड़ता हो, तब तक कदम नहीं उठेंगे जीवन हमारा कहीं भ्रांत है, कहीं गलत है, कहीं दिशा हमारी ऐसे रास्तों पर ले जाती है जो कहीं नहीं पहुंचाते। इसके बोध का जन्म आवश्यक है।
बोध के जन्म के लिए जो कसौटी में मानता हूं वह है मृत्यु के समक्ष अपने जीवन को रख कर तोलना। एक दिन तोलना पड़ेगा लेकिन उस पथ पर करने के लिए कुछ भी नहीं होता। इसलिए जो पहले से ही तोलने लगता है। वह जरूर कुछ कर पाता है। उसके जीवन में कुछ हो पाता है। उसके जीवन में कोई क्रांति घनीभूत हो जाती है। आज से ही तोलना जरूरी है। प्रतिदिन तोलना जरूरी है। एक बार मजाक में एक बात कही थी कि प्रत्येक आदमी को दुनिया में ऐसी अदालतें होनी चाहिए कि हर तीन वर्ष में उन अदालतों के सामने हर आदमी को मौजूद होना पड़े। और उसे ये कहना पड़े कि तीन वर्ष की जिंदगी, तीन वर्ष वह जीया है। उसकी सार्थकता अदालत के सामने सिद्ध करे! तो मजाक ही थी लेकिन ऐसी अदालतें हो सकती हैं और अगर हुईं तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। कैसे अपने जीवन की सार्थकता को सिद्ध करिएगा? कैसे कहिएगा कि मैं जो जीया हूं, उससे ये फल हुआ है? ये जीवन हुआ है, उससे ये सार्थकता निकली है, उससे ये अर्थ निष्पन्न हुआ है। लेकिन छोड़िए कोई अदालतें न हो लेकिन हर आदमी के मन में अपने विवेक की एक अदालत तो होनी ही चाहिए, जिसके समक्ष वो रोज ही खड़ा हो जाए। जिसके समक्ष उसे प्रतिक्षण ही मौजूद होना चाहिए और वहां पूछना चाहिए कि मैं क्यों जी रहा हूं और वहां पूछना चाहिए कि क्या जो मैं जी रहा हूं, उससे कुछ होगा, उससे कुछ मिलेगा, उससे मैं कहीं पहुंचूंगा, उससे दौड़ मिटेगी, उससे दुख मिटेगा, उससे अंधकार मिटेगा, उससे मृत्यु मिटेगी या नहीं मिटेगी। ये प्रश्न बहुत घनीभूत जिसके मन में होकर खड़े हो जाते हैं, उसके जीवन में धर्म का प्रारंभ होता है। शास्त्र पढ़ने से धर्म का प्रारंभ नहीं होता लेकिन स्वयं के समक्ष जीवन को निरंतर तोलने से धर्म का जन्म होता है। रोज-रोज तोलने की जरूरत है। एक-एक क्षण तोलने की जरूरत है।
इस विचार के लिए, इस प्रारंभिक विचार के लिए कहता हूं। इसी आधार पर केवल तीन दिनों के लिए आपसे बात करूंगा। उस मार्ग की जिस पर हम मृत्यु की दिशा से हट कर और अमृत की दिशा में गति कर सकते हैं। होगा आपके मन में भी खयाल कि यदि अमृत जीवन मिल जाए तो बहुत अच्छा, मन में ये आकांक्षा पैदा होती होगी कि मृत्यु से बच जाएं तो बहुत अच्छा। मन में लगता होगा कि कैसे अमृत को पा लें लेकिन नहीं वो पाने की वास्तविक आकांक्षा तब तक पैदा नहीं होगी, जब तक हमारा मौजूदा जीवन अपनी पूरी व्यर्थता में स्पष्ट न हो जाए। जब तक मौजूदा हमारे जीवन का ढंग, हमारी पद्धति हमारा सोच-विचार, हमारे प्राणों की गति सब की सब व्यर्थ होकर खड़ी न हो जाएं। जब तक हमें यह न दिखाई पड़ने लगे कि जो भी मैं कर रहा हूं, वह बिल्कुल व्यर्थ है। यह बेचैनी और यह घबड़ाहट और यह चिंता जब तक जीवन में न आ जाए कि जो मैं कर रहा हूं, वह व्यर्थ है, तब तक सार्थक की दिशा में कल्पना कैसे उठेगी और विचार कैसे जगेगा। तो आज तो यही करना चाहता हूं कि मृत्यु को अपने सामने ले लें हम सब उसे पीछे खड़ा रखते हैं। उसकी तरफ पीठ किए रखते हैं, जो आदमी मृत्यु की तरफ पीठ करे हुए है वह बहुत धोखे में है।
मैं एक यात्रा में था। वर्षा के दिन थे और पहाड़ी नदी के किनारे मुझे थोड़ी देर रूक जाना पड़ा। मेरी गाड़ी रूक गई। एक नाला था और जोर से गिरता था। मेरे पीछे और दो-तीन गाड़ियां थीं, वे भी रूक गईं। जो उनमें थे वे मेरे अपरिचित थे लेकिन मुझे बैठा देख कर मेरे पास आए और मुझसे कुछ बातें शुरू कीं। मैं उनसे बात कर रहा था और उनसे इस संबंध में अचानक बात हो आई उन्होंने मुझसे पूछा कि सबसे ज्यादा सोचने जैसी बात क्या है? तो मैंने उनसे कहा एक ही बात सोचने जैसी है और वह मृत्यु। बहुत उनसे बात होती रही। उन्होंने मुझसे कहा कि लौट कर वे मुझसे मिलेंगे। मैंने मजाक में उनसे कहा कि लौट कर मिलने का कोई पक्का भरोसा नहीं है। हो सकता है मैं न बचूं, हो

सकता है आप न बचें, हो सकता है हम दोनों बचें लेकिन मिलने का कोई संयोग न बचे।
उनसे मैंने एक छोटी सी कहानी कही और कभी मेरी कल्पना में न था कि क्या होगा जाते-जाते नाला उतर गया और तब मैंने उनसे एक कहानी कही कि चीन में एक बादशाह अपने वजीर पर नाराज हो गया। उसने उसे कैद कर दिया और तय किया कि फलां-फलां दिन सुबह उसे फांसी दे देगा लेकिन उस राज्य का रिवाज था कि जब भी किसी को फांसी हो तो फांसी के दिन सुबह-सुबह राजा खुद जाकर उस कैदी को मिले और उस कैदी की जो भी मंशा हो तो उसे पूरी करे। फिर तो वह वजीर था ऐसे राजा का बहुत प्यारा रहा था लेकिन कोई भूल-चूक हुई थी और राजा नाराज हुआ था और फांसी की सजा दे दी थी। आज फांसी होनी थी तो सुबह-सुबह ही राजा आया अपने घोड़े से उतरा और वजीर से बोलाः कोई तुम्हारी अंतिम इच्छा हो तो मैं पूरी कर दूं। लेकिन ये कहते ही वजीर की आंखों में आंसू आ गए। राजा बहुत हैरान था। वजीर बहुत बहादुर था। रोना उसने जाना नहीं था जीवन में और ये असंभव था कि अपनी मौत के खयाल से वे रोने लगे। ये असंभव था। राजा हैरान हुआ उसने कहा कि तुम्हारी आंखों में आंसू देख कर मैं हैरान हो रहा हूं। वजीर ने कहा इसलिए नहीं रोता हूं कि मेरी मौत करीब आ गई है। रोता हूं किसी और बात से, रोता हूं आपके घोड़े को देख कर। राजा ने कहा कि इसमें मेरे घोड़े को देख कर रोने की क्या बात है। और वजीर ने कहाः मैंने बरसों मेहनत करके एक कला सीखी थी, मैंने एक विज्ञान सीखा था कि घोड़े को मैं उड़ना सिखा सकता था लेकिन जिस जाति का घोड़ा उड़ना था वह मेरे जीवन में नहीं था। और जिस घोड़े पर आप बैठ कर आए हैं, ये उसी जाति का घोड़ा है। तो इसलिए आंख में आंसू आ गए कि जीवन भर जिस कला को सीखने में व्यर्थ किए, वो आज मेरे साथ समाप्त हो जाएगी।
राजा तो सोचा कि यदि घोड़ा उड़ना सीख जाए तो अदभुत बात होगी। तो उसने कहा इसमें कोई घबड़ाने की बात नहीं है। मत रो, कितनी देर लगेगी कि ये घोड़ा उड़ना सीख जाए। वजीर ने कहाः केवल एक वर्ष। राजा ने कहा यदि घोड़ा सीख गया तो मृत्यु के दंड से तुम बच ही जाओगे। फिर से तुम्हें वजीर बना देंगे और बहुत धन संपत्ति जो तुम चाहोगे देंगे और इसमें कोई हर्ज नहीं हो रहा है और यदि वर्ष भर बाद घोड़ा उड़ना नहीं सीखा तो तुम्हें फांसी लगा देंगे, वर्ष भर बाद लगा देंगे। वजीर घोड़े पर बैठ कर घर लौट आया। घर तो लोग रो रहे थे कि उसको फांसी हो गई है, उसको घर पर देख कर सब हैरान हुए।
उन सबने पूछा कैसे तुम लौट आए। उसने सारी कथा बताई। तो भी उसकी पत्नी रोती रही, बच्चे रोते रहे। उसने कहा तुम रोना बंद करो, उसकी पत्नी ने कहा मैं तो जानती हूं कि तुम घोड़े को उड़ाने की कोई कला जानते नहीं, तो तुमने ये क्या पागलपन किया। आज मरते तो वर्ष भर बाद मरोगे और हमारे लिए तो ये वर्ष भर भी तुम्हारी मृत्यु की प्रतीक्षा का समय होगा हम तो दुखी ही होंगे। अगर ऐसा ही किया था धोखा ही किया था तो कम से कम बीस वर्ष, पचास वर्ष, ऐसा कोई वक्त मांगते। लेकिन वह वजीर हंसने लगा उसने कहा कि तुम जिंदगी के रिवाज नहीं जानती हो। मैं मर जाऊं, घोड़ा मर जाए, बादशाह मर जाए। साल भर बड़ी बात है। और बीस वर्ष मांगता तो राजा की हिम्मत नहीं हो सकती थी। बीस वर्ष बहुत लम्बा समय होता है। एक वर्ष मांगा है, एक वर्ष बहुत लंबा वक्त है और कुछ भी हो सकता है। मैं मर सकता हूं, घोड़ा मर सकता है, बादशाह मर सकता है। बात टल जाएगी।
यह कहानी उनसे कही और घटना तो ऐसी घटी कि जिसकी कभी कोई कल्पना नहीं थी, वे तीनों ही मर गए उस वर्ष। राजा भी, वजीर भी और घोड़ा भी। यह उनसे कहा। नाला उतर गया, वे गाड़ी लेकर चले गए। और मुझसे बोले कि लौट कर आता हूं तो आपसे मिलूंगा। उन्होंने भी वही बात कही बातें हमारी कुछ ऐसी होती हैं कि कितना ही कहा जाए बार-बार हम फिर-फिर वही कहने लगते हैं, वही करने लगते हैं। उन्होंने फिर जाते वक्त मुझसे यही कहा कि लौट कर आते वक्त आपसे जरूर मिलूंगा, मुझे बहुत आनंद हुआ। मैं हंसने लगा, उनकी गाड़ी निकल गई, फिर पीछे मेरी गाड़ी निकली। दो मील के बाद ही मैंने उन्हें मरा हुआ पाया। उनकी गाड़ी तो टकरा गई थी और वे समाप्त हो गए थे। मेरा जो ड्राइवर था वह कहने लगा कि ये तो बड़ी अजीब बात हुई अभी-अभी आपने यही तो कहा था ये मैं आपसे कहता हूँ।

ये कोई पक्का भरोसा नहीं कि अभी आप जायें और घर पहुंच जाएं। आज पहुंच जाएंगे, कल नहीं पहुंच सकेंगे, कल पहुंच जाएंगे परसों नहीं पहुंच सकेंगे या फिर कितनी देर बचेंगे एक दिन वह होगा कि नहीं पहुंच पाएंगे। तो उसे दूर करके देखने से कोई फर्क नहीं पड़ता कि दस साल बाद वह दिन होगा या बीस साल बाद वह दिन होगा। जो जानता है वह उसे आज की रात ही करके देख लेता है। ऐसा ही सोच कर जाइए कि कल सुबह नहीं उठ सकेंगे फिर क्या करना है। ऐसा ही सोच कर जाइए कि कल सुबह नहीं होना है फिर क्या करना है। एक दिन तो जरूर ऐसी सुबह होगी कि आप नहीं होंगे, इसको तो पक्का मान लीजिए, इसमें कोई शक नहीं है। इसे समझाने की भी कोई जरूरत नहीं है, एक दिन तो पक्का ऐसा होगा कि सूरज उगेगा और आप नहीं होंगे। बहुत लोग जमीन पर थे वे अब नहीं हैं, आप हैं आप भी नहीं होंगे। जिंदगी में मृत्यु से ज्यादा निश्चित कुछ भी नहीं है लेकिन उस पर भी सबसे कम विचार है और सब अनिश्चित है, और सब संदिग्ध है। हो सकता है परमात्मा हो या न हो, हो सकता है आत्मा हो या न हो, हो सकता है कि यह सब दुनिया जो हम देख रहे हैं ये न हो, हो सकता है सपना हो फिर भी एक बात निश्चित है, एक बात में कोई संदेह नहीं है कि जो यहां है वो सदा यहां नहीं है। एक बात निश्चित है कि मौत है। मौत से बड़ा कोई सत्य नहीं है। लेकिन हम सब उसे पीठ के पीछे किए रहते हैं और अपने मरने की बात तो कभी सोचते नहीं और अगर कोई आपको याद दिलाए तो आप कहेंगे कि ऐसे अपशकुन की बातें मत करो ऐसी बातें मत करो, मरने की बातें क्या करनी हैं। मरने की बात ही हम दूर रखते हैं, उससे हाथ भर दूर रहते हैं लेकिन मौत तो आप से बड़ा प्रेम है, वह ज्यादा दिन दूर नहीं रहेगी जो जीवन पर विचार करेगा वह पाएगा कि मृत्यु सर्वाधिक निश्चित है।
तो फिर क्यों न इस सर्वाधिक निश्चित तथ्य को ही चिंतन का प्राथमिक तथ्य बना लिया जाए। तो फिर क्यों न इसको ही सोच कर जीवन का दर्शन खड़ा किया जाए। फिर जो भी फिलासफी हो जीवन की, जो भी जीवन का दर्शन हो, वो क्यों न इस मृत्यु की बुनियाद पर ही खड़ा हो। क्योंकि यही एक सुनिश्चित आधार है और बाकी सब आधार तो अनिश्चित हैं। इसको ही क्यों न हम बुनियाद में रख लें और जिस तथ्य को आज नहीं कल मुकाबला करना ही होगा उसे क्यों न आज ही पकड़ कर मुकाबला कर लें। जो आज उससे मुकाबला करने को राजी हो जाता है, जो आज उस पर चिंतन करने लगता है उसके पूरे जीवन की गति और दिशा बदल जाती है उसका जीवन कुछ से कुछ और ही हो जाता है। जो मृत्यु को आज ही चिंतन करने में समर्थ है और आज ही चिंतन करने का साहस करता है। आज ही उसको सामने ले लेता है पीछे से हटा देता है। आज ही उसे स्वीकार कर लेता है वह उसके कदम, उसकी श्वासें फिर मृत्यु की दिशा में चलने बंद हो जाते हैं। उसके समक्ष फिर एक नया द्वार और एक नया मार्ग खुलता है। वो मार्ग कैसे खुल सकता है, उसकी मैं बात करूंगा। आज की रात तो इस छोटे से ही बिंदु को विचार में डाल देना चाहता हूँ कि इस पर आप सोचेंगे और इस तथ्य को विचार में ले लेंगे आज रात सोते वक्त मृत्यु पर ही ध्यान करके सोइए। ताकि सुबह जब आप उठें कल दिन जो आप काम करें, उसमें बार-बार आपको यह खयाल आ सके कि यह जो मैं कर रहा हूं, ये जो हो रहा है, ये जो मैं कर रहा हूं, ये जो मैं इकट्ठा कर रहा हूं, ये सब उस अंतिम मृत्यु के समक्ष कोई अर्थ रखता है। मैं ये नहीं कहता हूं कि इसे छोड़ कर भाग जाए, मैं ये कह रहा हूं कि इसे बंद कर दें। इतना ही कह रहा हूं कि आपके समक्ष यह स्पष्ट हो जाए कि मृत्यु के समक्ष, मृत्यु के सामने, मृत्यु की मौजूदगी में मेरा यह किया हुआ कोई भी अर्थ नहीं रखता है।
इतना ही स्पष्ट समझाना पड़े आपसे इसे छोड़ने को नहीं कह रहा हूं, इसे छोड़ कर भागने को नहीं कह रहा हूं। इतना बोध स्पष्ट हो जाना चाहिए और तब आपके जीवन में एक नई खोज की प्यास अपने आप शुरू हो जाएगी। एक नई प्यास आप अनुभव करेंगे। ये सब चलेगा, ऐसा ही जैसा चलता है इससे कोई बहुत फर्क नहीं पड़ता लेकिन इसके किनारे-किनारे एक नई गति भी शुरू हो जाएगी और धीरे-धीरे आप पायेंगे कि काम तो आप यही सब कर रहे हैं, लेकिन प्राण आपके इस काम में नहीं रहे। काम तो आप यही सब कर रहे हैं लेकिन अब आपका शरीर ही है इसमें। आपकी आत्मा ने किसी और दिशा को अंगीकार कर लिया है। संसार में जो भी है जीवन में जो भी है, उसे बहुत कुछ करना पड़ेगा। जो केवल शरीर को ही बनाए रखने

के लिए ही जरूरी है लेकिन इतने पर ही सब समाप्त नहीं हो जाता और भी कुछ है भीतर, उसे पाने, उसे विकसित करने के लिए कुछ और भी जरूरी है। इसे छोड़ कर और उसके विरोध में नहीं है वह यहीं मौजूद है वह और यदि उसकी दिशा स्पष्ट हो जाए तो यह सब जो व्यर्थ दिखते काम हैं भी उस व्यर्थ काम के सार्थक अंग बन सकते हैं। ये जो रोटी कमाना है। ये जो वस्त्र पहनना है, ये जो मकान बनाना है, ये भी सार्थक हो सकता है। यदि आत्मिक दिशा में कोई चरण पड़ने शुरू हो जाएं। तब यह सब उस आत्मा के लिए ही अर्थपूर्ण हो जाएगा और तब यह सब भूमिका बन जाएगी और आधार बन जाएगा। शरीर आत्मा तक पहुंचने के लिए सीढ़ी बन जाता है। और यह जो सब सारे काम हैं, यह जो क्षुद्र से काम हैं ये आत्मा की दिशा में अगर मन गति न करता हो तो अपने आप में बिल्कुल व्यर्थ हैं लेकिन अगर गति करने लगे काम उस दिशा में तो ये सब काम भी सार्थक हो जाते हैं। परमात्मा और संसार में कोई बुनियादी विरोध नहीं है। परमात्मा और संसार में कोई शत्रुता नहीं है। लेकिन संसार अपने आपमें अकेला व्यर्थ है। और अगर वो परमात्मा के केंद्र पर घूमने लगे तो सार्थक हो जाता है। महावीर भी भोजन करते हैं और श्वास लेते हैं। कृष्ण भी पानी पीते हैं और क्राइस्ट भी कपड़े पहनते हैं। लेकिन फर्क है। बहुत-बहुत फर्क है। हम सिर्फ कपड़ा ही पहनते हैं और आगे मामला कुछ भी नहीं है। हम केवल शरीर को बचाए जाते हैं लेकिन आगे किसलिए और क्यों? हम भोजन किए जाते हैं लेकिन शरीर को बचाने की उपयोगिता क्या है? हम केवल साधनों को ही सम्हालते रहते हैं और समाप्त हो जाते हैं क्योंकि जीवन में कोई साध्य नहीं है। साधन सार्थक हो सकता है यदि साध्य हो। साधन अपने में तो बिल्कुल व्यर्थ होता है उसकी कोई सार्थकता नहीं है।
एक आदमी एक रास्ता बनाए, एक ऐसा आदमी जिसे कहीं भी न जाना हो और वह जिंदगी भर रास्ता बनाए, रास्ता तोड़े, जंगल तोड़े, मिट्टियां बिछाए, रास्ता बनाए और आप उससे पूछें ये रास्ता किसलिए बना रहे हो और वह कहे मुझे कहीं जाना तो नहीं तो रास्ता बनाना व्यर्थ हो गया। हम सब ऐसे ही रास्ते बनाते हैं जिन्हें कहीं जाना नहीं है। जिसे परमात्मा तक नहीं जाना है उसका जीवन एक ऐसा ही रास्ता है जिसे वह बना रहा है लेकिन कहीं जाएगा नहीं। जिसके प्राण परमात्मा तक जाने को आकांक्षी हो गए हैं, उसका ये सारा क्षुद्र जीवन ये सारा छोटा-छोटा मिट्टियों का बिछौना और मिट्टियों को रखना और जंगल को तोड़ना, रास्ते को बनाना सार्थक हो जाता है। रास्ते हम सब बनाते हैं, पहुंचते हममें से बहुत थोड़े हैं। क्योंकि रास्ता बनाते वक्त हमें पहुंचने का कोई खयाल ही नहीं है। ज्यादा महत्वपूर्ण है कि मैं पूछूं कि मैं क्यूं जीना चाहता हूं, बजाय इसके कि मैं जीने के लिए व्यवस्था करता जाऊं। ज्यादा उचित है कि मैं पूछूं कि मैं क्यूं बोलना चाहता हूं, बजाय इसके कि मैं सिर्फ होने की रक्षा करता चला जाऊं!
ये विचार, ये प्रश्न आपके मन में पैदा होने चाहिए, हमारे मनों में बहुत कम प्रश्न पैदा होते हैं। प्रश्न पैदा ही नहीं होते हैं और जब प्रश्न ही पैदा नहीं होते और जिज्ञासा ही पैदा नहीं होती तो खोज कैसे पैदा होगी? और खोज की आकांक्षा नहीं होगी तो उस दिशा में श्रम कैसे होगा? तो वह तो सारी बात इन तीन दिनों में धीरे-धीरे आपसे करूंगा। आज की रात इतना ही करता हूं मृत्यु को साथ लेकर सोएं, उस पर सोचते हुए सोएं कि वह आपके पास सोएगी। और उसे निरंतर समक्ष रखें, साथ रखें वो साथ है, उसे साथ रखें जो मृत्यु को साथ रख लेता है, मृत्यु को संगी बना लेता है, मित्र बना लेता है वो स्मरण रखे बहुत ज्यादा देर नहीं है कि परमात्मा उसके साथ होगा।
उसने पहला कदम उठाया है, मृत्यु के साथ जिसने दोस्ती की है और उसे साथ लिया है, उसने पहला कदम उठा लिया है। अमृत उसके साथ होगा। आज नहीं-कल। देर-अवेर परमात्मा उसके निकट होगा। मृत्यु के ही साथ हो जाने में सारी बात छिपी है। उसको मैं साधक कहता हूं, जिसने मृत्यु को साथ ले लिया है। उसको मैं संसारी कहता हूं जो मृत्यु से भाग रहा है और बच रहा है और उसे साथ नहीं ले रहा है। और ज्यादा नहीं कहूंगा।
शिविर की चर्चा तो कल सुबह से शुरू करूंगा, यह तो भूमिका के लिए कि आपके मन में अगर साधना का कोई भी जन्म हो सकता है तो तभी हो सकता है जब साधक

होने की इस पहली शर्त को आप पूरा कर दें। मौत से मुख मत मोड़िए उसकी आंखों में देखिए। उसे निकट ले लीजिए, आज उसके साथ ही सोइए। उस पर ही विचार करते हुए। अपनी मृत्यु पर विचार करते हुए। उसे निकट जानते हुए। वो कभी भी हो सकती है, किसी भी क्षण।
कल सुबह ही आपके मन में कुछ और प्रश्नों को जन्म मिलेगा अगर मिले तो मैं यहां तीन दिन हूं, उन प्रश्नों को मुझसे पूछ लें, उनकी चर्चा कर लें। अगर नहीं मिले, अगर मृत्यु को निकट लेने से कोई खयाल न आता हो तो कल सुबह दुबारा यहां न आएं इसका कोई मतलब नहीं, इसका कोई अर्थ नहीं। अगर आपको अपनी मृत्यु से कोई खयाल न आता हो तो फिर कल सुबह यहां न आएं उसकी कोई सार्थकता नहीं क्योंकि मैं जो कुछ भी कह सकता हूं वह उसके बाद ही महत्वपूर्ण है जब आपको अपनी मृत्यु का दर्शन होने लगा हो। और आपके मन में ये चिंता और विचार आने लगा हो कि मैं क्या करूं चारों तरफ से मौत घेरे हुए है, मैं क्या करूं, मैं कैसे ऊपर उठ जाऊं। चारों तरफ से सब नष्ट होने वाला है, तो मैं कुछ अविनश्वर को पाने के लिए कौन सा मार्ग खोजूं। तो कल आपका आना तभी अर्थपूर्ण है और मैं कुछ कहूंगा वह तभी सार्थक है क्योंकि मैं उसी सेतु को बनाने की बात करूंगा जो मृत्यु से अमृत तक ले जाता है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना है उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। परमात्मा आपको मृत्यु के निकट भूख दे, इसकी प्रार्थना करता हूं।

चित चकमक लागै नहीं
दूसरा प्रवचन

अविचार

मेरे प्रिय आत्मन्!
कल रात्रि को मृत्यु के संबंध में थोड़ी सी बातें मैंने आपसे कही थीं। जीवन की खोज में मृत्यु से ही प्रारंभ किया जा सकता है। जीवन को जानना और पाना हो तो केवल वे ही सफल और समर्थ हो सकते हैं... जो मृत्यु के तथ्य से खोज को प्रारंभ करते हैं। ये देखने में उलटा मालूम पड़ता है। ये बात उलटी मालूम पड़ती है कि हमें जीवन को खोजना हो तो हम मृत्यु से प्रारंभ करें लेकिन ये बात उलटी नहीं होती। जिसे भी प्रकाश को खोजना हो उसे अंधेरे से ही प्रारंभ करना होगा। प्रकाश की खोज का अर्थ है कि हम अंधेरे में खड़े हैं और प्रकाश हमसे दूर है अन्यथा उसकी खोज ही क्यों करें। प्रकाश की खोज अंधकार से ही शुरू होती है और जीवन की खोज मृत्यु से। जीवन की हमारी खोज है इसका अर्थ है कि हम मृत्यु में खड़े हैं और जब तक इस तथ्य का स्पष्ट बोध न हो तब तक कोई कदम आगे नहीं बढ़ाए जा सकते। इसलिए कल प्रस्ताविक रूप से प्राथमिक रूप से मृत्यु के संबंध में थोड़ी सी बात मैंने आपसे कही। और निवेदन किया कि मृत्यु को पीछे न रखें सामने ले लें। मृत्यु से बचें नहीं उसका सामना करें। मृत्यु से भागें नहीं, उसे भुलाएं नहीं, उसकी सतत स्मृति ही सहयोगी हो सकती है।
इन तीन दिनों में तीन बातों पर सुबह मैं आपसे चर्चा करूंगा और संध्या आपके प्रश्नों का उत्तर दूंगा। आज सुबह मृत्यु पर जो चर्चा थी उसके भी संदर्भ में दो बातें एक ही पेड़ पर आपसे कहना चाहता हूं। पेड़ होगा और अविचार तीनों शब्द इन तीन दिनों के चर्चा के लिए चुने हैं। आज अविचार पर चर्चा करूंगा, कल विचार पर, परसों निर्विचार पर। और विचार का अर्थ है चित्त की ऐसी दशा जहां हम अंधे होकर जीते हैं और कोई विचार नहीं करते। विचार से अर्थ है चिंतनपूर्वक सचेतन रूप से जीना और निर्विचार का अर्थ है विचार से भी ऊपर उठ जाना और समाज में जीना। तीन सीढ़ियां हैं, आज अविचार पर आपसे बात करूंगा। साधारणतः हम सब अविचार की स्थिति में हैं। जीवन में हमारे कोई विचार नहीं हैं। हम जीते हैं अंधी आकांक्षाओं की प्रेरणा पर। जीते हैं अंधी वासनाओं के धक्के पर। उन सारी वासनाओं के लिए हम उत्तर नहीं दे सकते कि क्यों? क्योंकि क्यों का उत्तर वहीं दिया जा सकता है जहां जीवन में विचार का प्रारंभ हुआ हो। भूख लगती है, प्यास लगती है, वासनाएं उठती हैं, हम उन्हें पूरा करने में संलग्न भी होते हैं लेकिन क्यों? क्यों का कोई उत्तर देना संभव नहीं है। भूख लगती है इसलिए भोजन की खोज करते हैं लेकिन भूख की क्या जरूरत है और भोजन की क्या जरूरत है, ये हमारे विचार का हिस्सा नहीं बनता और न बन सकता है?
विचारशील से विचारशील व्यक्ति को भी भूख लगती है और उसका कोई उत्तर नहीं है। जैसे पूरी प्रकृति अंधे होकर जी रही है, हम भी जीते हैं। वर्षा होती है, धूप निकलती है, सूरज निकलता है, रात होती है, क्यों? कोई उत्तर नहीं है। बीज से अंकुर पैदा होता है, वृक्ष बनता है, पत्ते लगते हैं, फूल लगते हैं, फल लगते हैं क्यों? कोई उत्तर नहीं है। पशु हैं, पक्षी हैं, कीड़े- मकोड़े हैं मनुष्य भी हैं क्यूं? ये सारा अस्तित्व जिस तल पर हम जी रहे हैं बिना किसी उत्तर के। हम हैं और जीने की बहुत प्रबल आकांक्षा है इसलिए जी जाते हैं लेकिन क्यों हैं और जीवन की प्रबल आकांक्षा क्यूं है इसका कोई उत्तर हमारे पास नहीं है और किसी मनुष्य के पास कभी नहीं रहा है। ये अविचार का तर्क है मैं आपको गाली देता हूं आपके भीतर क्रोध पैदा होता है, ये क्रोध क्यों पैदा होता है, गाली देने से। आपको कोई धक्का देता है आपके मन में हिंसा पैदा होती है, क्यों पैदा होती है? कोई आपको सुंदर मालूम पड़ता है, क्यों मालूम पड़ता है? कोई असुंदर मालूम पड़ता है क्यूं? कोई पसंद पड़ता है, कोई नापसंद। कोई प्रीतिकर लगता है, कोई दूर भागने जैसा लगता है। किसी को निकट रखने की इच्छा होती है किसी को दूर हटा देने की। शायद ही आपने पूछा हो यह सब क्यों हैं? और पूछेंगे तो भी कोई उत्तर उपलब्ध नहीं होगा।

खाली प्रश्न गूंजता रह जाएगा और कोई उत्तर नहीं पाया जा सकता। शरीर के तल पर प्रकृति के तल पर कोई उत्तर नहीं है। निरुत्तर हम जीए जाते हैं। और इसलिए जब मौत भी आएगी तो उसके लिए भी कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता। न जन्म के लिए कोई उत्तर था कि मैं क्यूं पैदा हुआ न मृत्यु के लिए कोई उत्तर होगा कि मैं क्यूं मर गया? न भूख के लिए कोई उत्तर था, न प्यास के लिए, न वासना के लिए, न किसी और गति के लिए कोई उत्तर था तो अंत में मृत्यु के लिए भी उत्तर नहीं हो सकता। जैसे जन्म को स्वीकार किया है वैसे ही एक दिन मृत्यु को भी स्वीकार कर लेने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। इस तल पर उत्तर है ही नहीं। यह शरीर का तर्क है और विचार का तर्क है, मृत्यु का तर्क है यहां कोई उत्तर नहीं है। अधिक लोग इसी तल पर जीते हैं, बिना किसी उत्तर के जीते हैं और जो जीवन बिना उत्तर के है वो व्यर्थ है उसकी सार्थकता स्वयं के समक्ष भी प्रकट नहीं है।
मेरे एक मित्र थे अभी-अभी उन्होंने आत्मघात कर लिया। विचारशील थे, बहुत सोचते थे। मरने के कोई दो दिन पहले मुझे मिलने आए थे और वर्षों से मरने का भी चिंतन करते थे। और बार-बार सोचते थे कि अपने को समाप्त कर लूं। मुझसे पूछने आए थे कि मैं अपने को समाप्त करना चाहता हूं। जिस तरह का जीवन है उसमें मुझे कोई अर्थ, कोई मीनिंग नहीं दिखाई पड़ता। मुझसे पूछने आए थे कि आपकी क्या राय है, आपकी क्या सलाह है? मैंने उनसे कहा कि अगर आपको मृत्यु में कोई अर्थ दिखाई पड़ता हो तो जरूर अपने को समाप्त कर लें। जीवन में तो कोई अर्थ दिखाई नहीं पड़ता, मृत्यु में कोई अर्थ दिखाई पड़ता है। वे बोलेः उसमें भी मुझे कोई अर्थ दिखाई नहीं पड़ता है। तो मैंने कहा, कोई फर्क न होगा इस जीवन को समाप्त कर लें, तो भी कोई फर्क न होगा, व्यर्थता वहीं की वहीं खड़ी रहेगी, जीवन भी व्यर्थ है मृत्यु भी व्यर्थ होगी। चोरों का कोई कारण नहीं है और हममें से भी हम अधिक लोग इसलिए जीए जाते हैं कि मर कर भी क्या करेंगे, मरने से भी क्या होगा। इसलिए जीते हैं, ये कोई जीवन नहीं है मृत्यु के विकल्प में भी कोई अर्थ नहीं है इसलिए जीए चले जाते हैं। फिर तो उन्होंने दो महीने बाद आत्मघात कर ही लिया। मुझे एक पत्र लिखा उस पत्र में लिखा है कि मैं तो अंततः इसी निर्णय पर पहुंचता हूं कि अपने को समाप्त कर लूं।
इधर पचास वर्षों में बहुत से लोगों ने अपने को समाप्त किया है। ऐसे लोगों ने जिन पर कोई कष्ट या कोई दुख नहीं था। जो कोई आर्थिक असुविधा में नहीं थे लेकिन सिर्फ इसलिये समाप्त किया कि जीवन का कोई अर्थ नहीं मालूम पड़ा। आप भी विचार करेंगे, आप भी सोचेंगे, आप भी चिंतन करेंगे तो शायद ही कोई अर्थ पाएं कि मैं क्यूं जीऊं और अगर आपके पास जीने के लिए कोई उत्तर नहीं है तो आपके जीवन में न कोई गहराई हो सकती है न कोई रणभूमि हो सकती है। ये जीना और न जीना करीब-करीब बराबर है। हैं तो ठीक, नहीं हैं तो ठीक। मेरे देखे शरीर के तल पर जीवन का कोई भी उत्तर नहीं मिल सकता है और हम सारे लोग शरीर के तल पर ही जीते हैं। भूख लगती है, प्यास लगती है, वस्त्र चाहिए, मकान चाहिए इसलिए जीते हैं।
थोड़ी देर के लिए सोचिए यदि आपके लिए सब मिल जाए भूख तृप्त हो जाए, प्यास तृप्त हो जाए, आपकी वासनाएं तृप्त हो जाए। जो आपको चाहिए वो मिल जाए फिर आप क्या करेंगे, सिवाय मरने के आपके पास कोई उपाय नहीं होगा। अगर आपकी सारी इच्छाएं तृप्त हो जाएं तो आप क्या करेंगे? क्या फिर एक क्षण भी आप जी सकेंगे? सो जाएंगे, अनंत निद्रा में सो जाएंगे। अभी भी जब तक आपकी इच्छा आपको दौड़ाती है दौड़ते हैं। जब कोई काम नहीं तो सिवाय सोने के आपके पास कुछ भी काम नहीं रह जाता। अगर आपकी सारी इच्छाएं तृप्त कर दी जाएं तो सिवाय मरने के आपके पास कुछ भी नहीं होगा। शरीर के तल पर कुछ परेशानियां हैं उनको पूरा करने के लिए हम जीते हैं लेकिन जाने शरीर तो मरेगा क्योंकि तो शरीर जन्मा है, जो जन्मा है उसकी तो मृत्यु होगी जो शुरू हुआ है उसका अन्त होगा। शरीर के तल पर जो जीवन है वो अनिवार्य रूप से मृत्यु में ले जाने वाला है। इसमें कोई दो मत न हैं न हो सकते हैं। क्या इसके ऊपर भी कोई जीवन हो सकता है। शरीर के तल पर तो कोई अर्थ, कोई मीनिंग नहीं पाया जा सकता है। क्या और किसी तल पर कोई मीनिंग कोई अर्थ पाया जा सकता है। शरीर तो बिल्कुल

प्रकृति का बंधा हुआ यंत्र है। प्रकृति जैसे यांत्रिक रूप से चलती है, वैसा ही शरीर भी चलता है, वहां कोई स्वतंत्रता नहीं है। वहां सब परतंत्र है। महावीर का शरीर भी परतंत्र है, कृष्ण और क्राइस्ट का भी, मेरा और आपका भी क्योंकि महावीर भी मर जाते हैं और कृष्ण भी और क्राइस्ट भी।
शरीर के तल पर आज तक कोई भी स्वतंत्र नहीं हुआ है। और न शरीर के तल पर
आज तक अमृत जीवन को पाया जा सका है। किसी ने भी नहीं पाया था और न कभी कोई पा सकेगा। शरीर मरणधर्मा है, अमृत वहां नहीं है। शरीर मृत्यु का घर है जीवन वहां नहीं है। यदि हम उसी घेरे में घूमते हैं, तो जैसा मैंने कल रात आपको कहा हम कुछ भी करें हम मृत्यु में पहुंच जाएंगे। शरीर बिल्कुल परतंत्र है वहां कोई स्वतंत्रता नहीं है। शरीर के ऊपर, शरीर के पास हमारे भीतर क्या कुछ है। जरूर मन की कुछ छद्म नीति है हर मनुष्य को अपने मन का बोध होता है। विचार के चरण पद-चिह्न सुनाई पड़ते हैं। चिंतन चलता है, सोच-विचार होता है। मन की कुछ खबर मिलती है, मन है। शरीर मैंने कहा अनिवार्य रूप से परतंत्र है। मन अनिवार्य रूप से परतंत्र नहीं है। मन स्वतंत्र हो सकता है। लेकिन सामान्यतः मन भी परतंत्र है। मन के तल पर भी हमारे जीवन में कोई स्वतंत्रता नहीं है। मन के स्तर पर भी हम परतंत्र हैं शरीर के तल पर वासनाएं, गतियां पकड़े हुए हैं, मन के तल पर विश्वास पकड़े हुए है। मन के तल पर शब्द और शास्त्र और सिद्धांत पकड़े हुए हैं। मन भी दास है और मन भी परतंत्र लकीरों पर दौड़ता है और चलता है। वहां भी कोई स्वतंत्रता नहीं है। लेकिन मन स्वतंत्र हो सकता है। यह फर्क है शरीर और मन में। शरीर परतंत्र है और स्वतंत्र नहीं हो सकता है। मन भी परतंत्र है, लेकिन स्वतंत्र हो सकता है। उसके पास भी एक तत्व है उसकी मैं चर्चा करूंगा। उस दिशा में हम काम करेंगे, उसे आत्मा कहा है। कुछ और भी कहा जा सकता है आत्मा स्वतंत्र है और परतंत्र नहीं हो सकती है। ये तीन तल हैं जीवन के। शरीर परतंत्र है और स्वतंत्र नहीं हो सकता है। मन परतंत्र है लेकिन स्वतंत्र हो सकता है। आत्मा स्वतन्त्र है और परतंत्र हाने में असमर्थ है। लेकिन इस आत्मा को जो अनिवार्य रूप से स्वतंत्र है और जीवंत है, जो अमृत है और जिसकी कोई मृत्यु और कोई जन्म नहीं, इसे जानने में केवल वही मनुष्य समर्थ हो सकता है जो स्वतंत्र हो यदि मन परतंत्र हो तो शरीर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जान पाएगा परतंत्र मन परतंत्र शरीर के बाहर आंख नहीं उठा सकता है। मन जब तक परतंत्र है तब तक हम जानेंगे कि हम शरीर से ज्यादा नहीं है मन यदि स्वतंत्र हो तो स्वतंत्र मन की आंखें उस आत्मा की तरफ भी उठनी शुरू हो जाएगी जो कि स्वतंत्र है और जो कि जीवंत है। इसलिए न तो प्रश्न शरीर का है और न प्रश्न आत्मा का है, सारा प्रश्न जीवन की साधना का है मन पर केंद्रित है। मन परतंत्र है तो जीवन शरीर से ऊपर नहीं हो सकता। अर्थात जीवन मृत्यु से ले जाएगा।
मन यदि स्वतंत्र है तो जीवन की आंख अनंत की तरफ उठनी शुरू हो सकती है। क्या हमारे मन स्वतंत्र हैं या परतंत्र? हमारे मन आम तौर से परतन्ंत्र हैं। हमारे मनों ने कोई स्वतंत्रता नहीं जानी है। हम केवल वस्त्र ही दूसरों जैसे नहीं पहनते हैं, भोजन ही दूसरों जैसा नहीं करते हैं, हम विचार भी दूसरों जैसा ही करते हैं। विचार के तल पर भी हम अनुगामी हैं किसी के, जो अनुगामी हैं जो परतंत्र हैं। जो किसी को फैलो करता है जो किसी के पीछे चलता है वो परतंत्र है। शरीर के तल पर हम परतंत्र हैं। मन के तल पर भी हम अपने को परतंत्र बनाए हुए हैं। क्या एकाध विचार कभी आपने कभी सोचा है या कि सब विचार आपने उधार ले लिए हैं। क्या कभी एकाध विचार का आपके भीतर जन्म हुआ है या कि सब विचार आपने इकट्ठे कर लिए हैं। बहुत विचार आपके मन में होंगे उन पर थोड़ा देखें और देखेंगे तो पाएंगे कि वे कहीं से आए हैं आपके भीतर इकट्ठा हो रहे हैं। जैसे वृक्षों पर सांझ को पक्षी आकर बैठ जाते हैं ऐसे ही हमारे मन में भी विचारों ने अपने डेरे बनाए हुए हैं। वे सब विचार दूसरों के लिए बनाए गए हैं और उधार केवल वही मनुष्य अपने को मनुष्य कहने का हकदार बनता है जो एकाध विचार की अनुभूति को स्वयं उत्पन्न करने में समर्थ हो जाता है। उसके भीतर स्वतंत्रता की शुरुआत होती है अन्यथा हम परतंत्र हैं। सारे मनुष्य परतंत्र हैं और उनकी परतंत्रता का आधार इस बात

में है कि उन्होंने खुद कभी कोई विचार नहीं किया है। उन्होंने सब विचार स्वीकार कर लिए हैं। उन्होंने हां भर दी है। उन्होंने आस्था कर ली है, उन्होंने श्रद्धा कर ली है, उन्होंने विश्वास कर लिया है। हजारों वर्षों से विश्वास सीखाया जाता है, विचार नहीं। हजारों वर्षों से श्रद्धा सिखाई जाती है, चिन्तन नहीं। हजारों वर्षों से मानो आस्था, मान्यता सिखाई जाती है मनन नहीं और परिणाम यह हुआ है कि मनुष्य की जाति निरंतर परतंत्र से परतंत्र होती चली गई।
हमारे लोग जंजीरों में जकड़ गए हैं, जो केवल दोहराते हैं, रिपीट करते हैं, कुछ सोचते नहीं। अगर मैं आपसे कोई भी प्रश्न पूछूं, तो जो भी उत्तर आप देंगे, वह करीब-करीब दोहरावट होगी, पुनरुक्ति होगी, रिपीटिशन होगा, चिंतन नहीं होगा। अगर मैं आपसे पूछूं, ईश्वर है, तो आपके भीतर जो उत्तर आएगा विचार करिए वह उत्तर आपका है? अगर मैं आपसे पूछूं, आत्मा है और आपके भीतर जो भी उत्तर आए चाहे यह उत्तर आए कि आत्मा है, चाहे यह उत्तर आए कि आत्मा नहीं है, क्या वह आपके विचार से जन्मा है? या कि आस-पास की हवाओं से आपमें प्रविष्ट हो गया है। आपने किसी शास्त्र से समझ लिया है, किसी धूल से स्वीकार कर लिया है या आपने जाना अगर वो उत्तर आपको ज्ञात हो कि आपका जाना हुआ नहीं है तो आप समझना कि आपका मन परतंत्र है। ये तो आत्मा और परमात्मा दूर की बात है। जीवन के बहुत सहज अनुभव भी हमारे अपने नहीं होते, वो भी हम दोहराते हैं। अगर मैं एक गुलाब के फूल को आपके सामने रखूं और पूछूं कि क्या ये सुंदर है, तो शायद आप कहेंगे सुंदर है। लेकिन इस पर भी थोड़ा विचार करना कि ये भी आपने स्वीकार किया है या स्वयं जाना है। क्योंकि दुनिया में अलग-अलग कौमें अलग-अलग फूलों को सुंदर समझती हैं। और दुनिया में अलग-अलग चेहरे, अलग-अलग कौमों में सुंदर समझे जाते हैं। और उन कौमों में जो बच्चे पैदा होते हैं वे सौंदर्य की उन्हीं परिभाषाओं को सीख लेते हैं और जीवन भर दोहराते हैं। जो नाक ईरान में सुंदर हो सकती है वह चीन में सुंदर नहीं। तो फिर शक हो जाता है कि सौंदर्य की अनुभूति हमारी है या हमारे समाज से हमें उपलब्ध हो गई है। जो चेहरा हिंदुस्तान में सुंदर है वह जापान में नहीं। और जो निग्रो चेहरा निग्रो कौम में सुंदर मालूम होगा वह हिंदुस्तान में नहीं सुंदर मालूम होगा। हिंदुस्तान में पतले होंठ सुंदर है और निग्रोस के लिए चौड़े ओंठ सुंदर हैं। निग्रो बच्चा जीवन भर यही दोहराता रहेगा कि ये ओंठ सुंदर हैं और भारत में पैदा हुआ बच्चा यही दोहराता रहेगा कि यह ओंठ सुंदर हैं। कौन सा ओंठ सुंदर है, कौन सा चेहरा, कौन सा फूल। ये भी हमारी अपनी अनुभूति नहीं है यह भी हम दोहरा रहे हैं।
अगर मैं आपसे पूछूं कि प्रेम क्या है, तो वो भी आप दोहराएंगे, वह भी आपने किसी शास्त्र में पढ़ा होगा। वह भी शायद ही आपने जाना हो और खोजा हो। यदि हमारा व्यक्तित्व और हमारा चित्त इस भांति दोहराने वाला है, समाज की प्रतिध्वनि करने वाला है तो फिर वो स्वतंत्र नहीं होगा? कैसे स्वतंत्र होगा? हम केवल ईकोइंग पॉइंट हैं हम केवल दोहराने वाले बिंदु हैं। समाज की आवाजें हमसे गूंजती रहती हैं, उनको दोहराते रहते हैं, हम व्यक्ति नहीं हैं, हम इंडिविजुअल नहीं हैं। हमारे भीतर व्यक्तित्व का जन्म ही नहीं हुआ। और जिसके भीतर व्यक्तित्व का जन्म नहीं हुआ वह अमृत को कैसे पा सकेगा? आपके पास है क्या जिसे आप बचाना चाहते हैं। क्या है आपके पास जिसे आप कह सकें मेरा। मैंने जाना और मैंने जीया। अगर ऐसा कुछ भी नहीं है तो मृत्यु तो निश्चित है। यह सब जो समाज से आया है, वापस लौट जाएगा। आपने क्या जन्माया है जो समाज से न आया हो, जो किसी दूसरे से न आया हो, जिसे आप कह सकें प्रमाणित रूप से मेरा है, अगर ऐसा कुछ भी नहीं, तो आपके भीतर आत्मा का दर्शन कैसे हो सकेगा। प्रमाणिक रूप से जब चित्त में कुछ मेरा होता है तो फिर आत्मा की और गति शुरू होती है। मैं पात्र होता हूं आत्मा को जानने में समर्थ होता हूँ। व्यक्तित्व का जन्म स्वतंत्र चित्त के बिना संभव नहीं है। और हमारे चित्त बिल्कुल परतंत्र हैं हमारा मन बिल्कुल गुलाम है। और मन की गुलामी बहुत गहरी है और हजार-हजार रास्तों से हमें गुलामी के लिए तैयार किया जा रहा है। सब भांति हमें गुलाम बनाने की चेष्टा रही है। चेष्टा में कुछ कारण हैं। समाज के हित में है कि व्यक्ति गुलाम हो। राज्य

के हित में है कि व्यक्ति गुलाम हो। धर्मों-संप्रदायों के हित में है कि व्यक्ति गुलाम हो। पुरोहितों-पंडितों के हित में है कि व्यक्ति गुलाम हो।
व्यक्ति जितना गुलाम हो उतना ही उसका शोषण किया जा सकता है और व्यक्ति जितना गुलाम हो उतना ही उससे विद्रोह की संभावना समाप्त हो जाती है। व्यक्ति का मन अगर बिल्कुल परतंत्र हो तो खतरनाक भी रह जाता है। विद्रोह और क्रांति असंभव हो जाती है। समाज नहीं चाहता कि किसी व्यक्ति का चित्त स्वतंत्र हो। इसलिए समाज बचपन से ही व्यक्ति को परतंत्र करने के सारे उपाय करता है। सारी शिक्षाएं और सारे संस्कार व्यक्ति के चित्त को गुलाम बनने की आधारभूमि बन जाते हैं। इससे पहले कि हमें होश आए हम करीब-करीब जंजीरों में जकड़ दिए गए होते हैं। जंजीरों के नाम कुछ भी हो सकते हैं हिंदू हो सकता है, जैन हो सकता है, भारतीय हो सकता है, अभारतीय हो सकता है, ईसाई, मुसलमान हो सकता है। जंजीरों पर कोई भी मार्क हो सकते हैं, कोई भी निशान हो सकते हैं, कोई भी नाम हो सकते हैं लेकिन हजार-हजार तरह की जंजीरें हमारे मन को पकड़ लेती हैं और फिर हम उनके ऊपर सोचना बंद कर देते हैं। बहुत कम लोग हैं जो सोचते हैं। अधिकतम लोग दोहराते हैं, फिर चाहे वे महावीर को दोहराएं, चाहे बुद्ध को, चाहे गीता को, चाहे कुरान को। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता जब तक आप दोहराते हैं तब तक आप अपनी आत्मा के साथ सबसे बड़ा पाप करते हैं। जब तक आप किसी को भी दोहराते हैं तब तक आप स्वतंत्र होने की तैयारी नहीं कर रहे हैं। लेकिन कहा तो यही जाता है कि जो श्रद्धा नहीं करेगा उसे आत्मा नहीं मिलेगी। कहा तो यही जाता है कि जो विश्वास नहीं करेगा वह मोक्ष नहीं पा सकेगा लेकिन कितनी मूढ़तापूर्ण बात है। विश्वास है अंधापन, विश्वास है परतंत्रता और मोक्ष है परम स्वतंत्रता। विश्वास से कैसे मोक्ष मिलेगा, विश्वास से कैसे आत्मा मिलेगी। विश्वास तो है अंधापन उसी तल का अंधापन, जिस तल का अंधापन शरीर पर है। वासनाओं में उसी तल का अंधापन मन पर पैदा हो जाए तो विश्वास है।
मैं निवेदन करता हूं कि विश्वास पर छोड़िए और विचार को जन्म दीजिए। विश्वास की स्थिति अविचार की स्थिति है। लेकिन हम विश्वास क्यों कर लेते हैं यह तो समझ में आ जाती है बात कि समाज के हित में है विश्वास। शोषण के हित में है विश्वास, मंदिरों-पुजारियों इनके हित में है विश्वास। क्योंकि इनका सारा व्यापार विश्वास पर है। जिस दिन विश्वास नहीं है उस दिन यह सारा व्यापार टूट जाएगा। यह तो समझ में आता है कि उनके हित में है लेकिन हम क्यों विश्वास कर लेते हैं, मैं और आप क्यों विश्वास कर लेते हैं? हम इसलिए विश्वास कर लेते हैं कि विश्वास बिना मेहनत के उपलब्ध होता है, बिना श्रम के। विचार के लिए परिश्रम करना होगा। विचार के लिए पीड़ा से गुजरना होगा। विचार के लिए चिंता में पड़ना होगा। विचार के लिए कष्ट सहना होगा। विचार के लिए संदेह में पड़ा रहना होगा। विचार में आप अकेले रह जाएंगे। विश्वास में सारी भीड़ आपके साथ है। विश्वास में एक सुरक्षा है, विश्वास में एक सिक्योरिटी है, एक तरह का सहारा है। विचार में बड़ी असुरक्षा है। भटक जाने का डर है। भूल हो जाने की संभावना है, मिट जाने का डर है। एक तो विश्वास की दुनिया में जहां राजपथ पर हजारों लोग चल रहे हैं, वहां हम भी चलते हैं, उस भीड़ में हमें कोई डर नहीं मालूम होता, चारों तरफ लोग ही लोग होते हैं। विश्वास का रास्ता तो भीड़ का रास्ता है। विचार का रास्ता अकेलेपन का रास्ता है। वहां आप अकेले होंगे। वहाँ कोई सहारा नहीं होगा।
वहां आस-पास कोई भीड़ नहीं होगी।
भीड़ ऐसे विश्वास तक करा सकती है जिनकी आप कल्पना नहीं कर सकते।
अरस्तू ने लिखा है कि स्त्रियों के दांत पुरुषों के दांत से कम होते हैं।
ये आदमी बहुत समझदार है और पश्चिम में तर्क का जन्मदाता समझा जाता है।
पिता समझा जाता है। और उसकी एक औरत नहीं थी। उसकी खुद की दो औरतें थीं लेकिन उसने कभी गिनने की फिकर नहीं की कि औरत का मुंह खोल कर वह गिन लेता कि दांत कितने थे। लेकिन हजारों वर्षों से यूनान में यह विश्वास था कि स्त्रियों के दांत पुरुषों से कम होते हैं। असल में स्त्रियों की सब चीजें कम होनी ही चाहिए पुरूषों से। क्योंकि स्त्री तो कोई नीचे किस्म का पशु है। पुरूष कुछ ऊंचे किस्म का। तो स्त्री के दांत पुरूष के बराबर हो ही

कैसे सकते हैं ये बात साफ थी इसलिए किसी ने गिनती की फिकर नहीं की। और यूनान में हजार वर्षों तक यह समझा जाता रहा कि स्त्रियों के दांत पुरूषों से कम होते हैं। और स्त्रियां तो इतनी दयनीय हैं कि पुरूष जो कहता है उसे स्वीकार कर लेती हैं। उन्होंने खुद भी अपने दांत नहीं गिनें। अरस्तु जैसे समझदार व्यक्ति ने भी अपनी किताब में लिख दिया कि स्त्रियों के दांत पुरुषों से कम होते हैं। अरस्तु के मरने के एक हजार वर्ष बाद तक भी यूरोप यही मानता था कि स्त्रियों के दांत कम होते हैं। लेकिन किसी समझदार को ये खयाल न सूझा कि मैं गिन लूं। गिनने का खयाल तो तभी पैदा हो सकता है। जब किसी में विचार पैदा हो लेकिन अगर विश्वास हो तो गिनने का कोई सवाल ही नहीं है। भीड़ ने हजारों तरह की बेवकूफियां हजारों साल तक मानी है। और उस भीड़ में समझदार से समझदार लोग भी सम्मिलित रहे। और उन्हें कभी खयाल नहीं उठा, क्योंकि संदेह नहीं उठा। जिसके मन में संदेह नहीं उठता उसके मन में विचार पैदा नहीं हो सकता है।
संदेह से बड़ी आध्यात्मिक और कोई क्षमता नहीं है। श्रद्धा से बड़ा पाप नहीं, संदेह से बड़ा धर्म नहीं। संदेह उठना चाहिए क्योंकि संदेह नहीं उठेगा तो आप समाज से भीड़ से मुक्त नहीं हो सकते। स्वतंत्र नहीं हो सकते। भीड़ तो समझाती है कि संदेह मत करना, क्योंकि जो संदेह करेगा वह नष्ट हो जाएगा। मैं आपसे निवेदन करता हूं जिसने संदेह किया है, उसी ने पाया है, और जिसने विश्वास किया है, वह तो विश्वास करते ही नष्ट हो गया। हो जाने का सवाल ही नहीं आया। क्योंकि विश्वास का अर्थ है कि मैं अंधा हूं और मैं मानता हूं जो कहा जाता है। और संदेह का अर्थ है कि मैं अंधा होने को राजी नहीं हूं, मैं विचार करूंगा और जब तक खुद न अनुभव कर लूं तब तक विश्वास करने के लिए राजी नहीं हूंगा। संदेह में साहस है, विश्वास में आलस्य है। आलस्य के कारण हम विश्वास किए हुए हैं। कौन खोजे इसलिए, जो दूसरे कहते हैं उसे हम विश्वास कर लेते हैं। फिर हजारों वर्ष की जब परंपरा होती है तो उसमें बल होता है। क्योंकि ये खयाल होता है कि हजारों वर्ष तक लोग गलत तो नहीं सोच सकते। तो जब हजारों वर्ष तक करोड़ों-करोड़ों लोगों ने एक ही तरह सोचा है तो उन्होंने ठीक ही सोचा होगा। भीड़ सेंशन बन जाती है किसी चीज की सच्चाई का जब कि भीड़ कहीं किसी चीज की सच्चाई का। कोई प्रमाण नहीं है। अक्सर तो भीड़, जो मर गए हैं उनका अनुगमन करती रहती है। भीड़ कोई अनुभव नहीं करती। भीड़ के पास अनुभव करने का कोई उपाय भी नहीं है। व्यक्ति अनुभव करता है, समाज कुछ भी अनुभव नहीं करता। समाज के पास अनुभूति की कोई आत्मा नहीं है। समाज तो निष्प्राण यंत्र है। इसलिए समाज पर जो निर्भर होता है वह खुद भी धीरे-धीरे एक यंत्र हो जाता है और उसका व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है। समाज से मुक्त हुए बिना कोई धार्मिक नहीं हो सकता।
ये तो बात सुनी होगी कि संन्यासी समाज को छोड़ कर चले जाते हैं लेकिन
वे छोड़कर जाते नहीं। घर छोड़ कर चले जाते हैं। परिवार छोड़ कर चले जाते हैं लेकिन समाज को कोई संन्यासी छोड़ता नहीं। जब कोई संन्यासी समाज को ही छोड़ देता है तो जरूर सत्य उसे उपलब्ध होता है। समाज कोई इसलिए नहीं छोड़ता कि जैन धर्म में बंधा हुआ कोई व्यक्ति जब संन्यासी हो जाता है तो संन्यासी कहता है मैं जैन होने के बाद भी साहब हूं। घर तो उसने छोड़ा लेकिन समाज उसने नहीं छोड़ा। पत्नी उसने छोड़ी लेकिन गुरु उसने नहीं छोड़ा। शरीर के तल पर वो भागा लेकिन मन के तल पर वो गुलाम है। शरीर के तल पर भागने का कोई अर्थ नहीं है सवाल तो मन के तल पर भागने का है। वो धर्म जो बचपन से उसे सिखाया गया वह अब भी उसके मन को पकड़े हुए है, वे जो उत्तर उसे बताए गए अब भी उसके मन में बैठे हुए हैं। वे शास्त्र जो उसे बताए गए थे वो अब भी उन्हें दोहराता है। वह मन के तल पर गुलाम है। मैं आपसे कहता हूं शरीर के तल पर मत भागें। शरीर के तल पर कोई भाग नहीं सकता। वह जो संन्यासी भाग गया शरीर के तल पर वो भी नहीं भागा है क्योंकि रोटी मांगने वो समाज में वापस आता है। कपड़ा मांगने समाज में वापस आता है। शरीर के तल पर तो कोई समाज से भागेगा कैसे, मन के तल पर मुक्त हो सकता था। उस तल पर मुक्त नहीं हुआ, जिस तल पर मुक्त हो ही नहीं सकता, उस तल पर झूठे दंभ में पड़ गया है। शरीर के तल पर तो कोई भाग नहीं सकता कहीं भी। शरीर के तल पर तो समूह में जीएगा। बड़े से बड़ा ज्ञानी भी समूह पर

जीएगा। लेकिन मन के तल पर मुक्त हो सकता था। उस तल पर मुक्त नहीं हुआ है। वहीं मुक्त होना है।
मैं आपसे नहीं कहता कि कोई घर-बार छोड़ कर चला जाए वो सब पागलपन है लेकिन मन की दीवारें गिरा दे, मन के तल गिरा दे और मन के भीतर जो बनाए हुए घेरे हैं वो तोड़ दें। और मन के भीतर जो जंजीरें हैं उनको नष्ट कर दें तो उसके जीवन में स्वतंत्रता की शुरुआत होगी। पहला तथ्य है कि संदेह करें, जो भी दिखाया गया है उस पर संदेह करें। इसलिए नहीं कि वो गलत है। इस बात को समझ लें ठीक से। महावीर पर संदेह करें, बुद्ध पर संदेह करें। इसलिए नहीं कि बुद्ध और महावीर जो कहें वो गलत है। इसलिए नहीं, नहीं विश्वास करना गलत है। इस बात को समझ लें। कुरान पर संदेह करें, बाइबिल पर संदेह करें, गीता पर संदेह करें, इसलिए नहीं कि जो लिखा है वो गलत ये मैं नहीं कह रहा हूँ। मैं ये कह रहा हूं कि विश्वास करना गलत है। और अगर विश्वास कर लेंगे तो जो उनमें लिखा है, जो उनमें कहा है, उसे कभी नहीं जान पाएंगे और अगर संदेह करेंगे तो एक दिन जरूर वो सत्य आपके सामने भी उद्घाटित होगा जो महावीर और बुद्ध के सामने भी उदघाटित हुआ है। संदेह अविचार को तोड़ता है। श्रद्धा अविचार को घनीभूत कर देती है।
विश्वास अविचार का समर्थक है। संदेह अविचार की स्थिति को तोड़ता है लेकिन विचार में तो पीड़ा होगी। विचार तो एक तप है, उपवास तप नहीं है। भूखे रह जाना कोई बड़ी तपस्या नहीं है। प्यासे रह जाना कोई बड़ी तपस्या नहीं है। सर्कस में भी कोई कर सकता है। लेकिन संदेह करना बहुत बड़ा तप है। संदेह न करने का अर्थ है असुरक्षा में खड़े होने को राजी होना। अज्ञान में खड़े होने को राजी होना। खुद के पैरों पर खड़े होने को राजी होना। सारे सहारे छोड़ देना। और स्मरण रखें जब तक कोई सहारों को लेकर चलता है जब तक उसके पैर कभी भी चलने में समर्थ नहीं हो सकते, और जब तक कोई मन के तल पर विश्वास करता है तब तक उसका खुद का मन सत्य को खोजने की शक्ति नहीं जुटा सकता। हम शक्ति जुटाते तभी हैं जब हम असुरक्षा में पड़ जाते हैं। शक्ति इकट्ठी तभी होती है, जागती तभी है जब हम असुरक्षा में पड़ जाते हैं। आपसे मैं कहूं कि दौड़ें, आप दौड़ेंगे, बहुत धीमे दौड़ेंगे। आपसे मैं कहूं पूरी ताकत लगा कर दौड़ें, तभी भी आप बहुत धीमे दौड़ेंगे लेकिन अगर आपके प्राणों के पीछे कोई बंदूक लेकर पड़ जाए तो आपके पैरों में वो गति आएगी, जिसकी आपको खुद भी कोई कल्पना नहीं थी।
एक बार ऐसा हुआ जापान में एक बहुत बड़े राजा का नौकर उस राजा की रानी के प्रेम में पड़ गया। जैसे ही राजा को पता चला ये तो बहुत असहन और अपमान की बात थी एक साधारण सा नौकर, एक गुलाम उसकी रानी को प्रेम करे और रानी उसके प्रेम में पड़ जाए हालांकि प्रेम जानता नहीं कि कौन गुलाम है और कौन नौकर? लेकिन समाज के हिसाब हैं। प्रेम को कुछ पता नहीं चलता कि कौन राजा है, कौन नौकर। प्रेम तो जिसे हो जाए उसे ही राजा बना देता है और जिसे ना हो जाए वो नाखुश रहता है। लेकिन राजा ने सोचा कि ये क्या गड़बड़ बात है और ये बड़े अपमान की बात है, और ये अफवाह फैलेगी तो बहुत बुरा होगा। उसने नौकर को बुलाया नौकर सच में बहुत प्यारा था और राजा भी उससे बहुत प्रेम करता था। उसने नौकर को कहा कि उचित तो यही था कि मैं तलवार उठाऊं और तेरे सिर को तेरे शरीर से अलग कर दूं लेकिन मैंने भी तुझे प्रेम किया है और तू अदभुत व्यक्ति था, इसलिए तुझे मैं एक मौका दूंगा। तलवार उठा और मेरे सामने आ, हम दोनों तलवार से लड़ें और जो मर जाए वो मर जाए, जो बच जाए वो मालिक हो जाए, ये बड़ी दया की बात थी, राजा के लिए ये अनिवार्य न था कि वो नौकर से लड़ें और उसे भी एक मौका दें। उसे वह वैसे ही मार डाल सकता था। नौकर ने कहाः आप कहते तो ठीक हैं लेकिन बात वहीं की वहीं रही। क्योंकि मैंने तो कभी तलवार उठाई ही नहीं। तो मैं तलवार उठाके भी आपसे कितनी देर जीत पाऊंगा और आप तो बड़े कुशल, आपका तो दूर-दूर तक नाम है, आप जैसा तलवार चलाने वाला नहीं है।
तो आप कहते तो हैं कि मुझ पर दया कर रहे हैं लेकिन ये कोई दया ना हुई क्योंकि मैं सोचता हूं कि इसका मतलब, इसका अंत क्या होने वाला है। मैंने तो कभी तलवार पकड़ी भी नहीं मुझे तो पता भी नहीं कि तलवार कैसे पकड़ी जाती है, मैं आपके मुकाबले में कैसे जीतूंगा। फिर भी राजा ने कहाः आज्ञा थी

इसलिए उसे तलवार उठानी पड़ी। सारे दरबार के लोग खड़े होकर देखते थे। राजा ने अपने जीवन में बहुत से द्वंद्व जीते थे। दूर-दूर तक उसका नाम था, उस जैसा तलवार चलाने वाला कुशल व्यक्ति नहीं था। लेकिन लोग भी हैरान हुए, राजा खुद भी हैरान हुआ, उस नौकर के सामने तलवार चलाना मुश्किल हो गया वह तलवार चलाना जानता भी न था लेकिन राजा हर घड़ी पीछे हटने लगा। नौकर ऐसे वार कर रहा था कि वो घबड़ा गया, वह वार बिल्कुल अकुशल थे। वह आक्रमण बिल्कुल ही गड़बड़ था। पद्धति के बाहर था। लेकिन नौकर के सामने एक ही विकल्प था मरना या मारना। उसकी सारी शक्तियां इकट्ठी हो गई थीं। उसके सारे सोए प्राण जाग गए थे। उसके सामने दूसरा कोई सवाल नहीं था। वह मरेगा यह तय था इसलिए वह मारने के लिए कुछ भी कर रहा था। और अंत में राजा को चिल्लाना पड़ा कि ठहरो! राजा ने कहा कि मैं हैरान हूँ, मैंने तो ऐसा आदमी नहीं देखा कभी, मैं तो हैरान हूं। ये क्या हुआ कि एक साधारण सा नौकर इतनी शक्ति को उपलब्ध हो गया। उसके बूढ़े वजीर ने कहा कि मैं तो पहले से ये सोच रहा था कि आज आप मुसीबत में पड़ जाएंगे। क्योंकि आप सिर्फ कुशल हैं लेकिन आपके सामने मृत्यु का सवाल नहीं। वो व्यक्ति कुशल नहीं हैं लेकिन उसके सामने मृत्यु का सवाल है। आपकी पूरी शक्तियाँ नहीं जाग सकतीं, उसकी पूरी शक्तियाँ जाग गई हैं, उससे जीतना असंभव है। जब भी मनुष्य के सामने उसके सारे सहारे समाप्त हो जाते हैं तभी उसके भीतर की शक्तियाँ जागती हैं। जब तक हम सहारों को पकड़ते हैं, तब तक हम अपने आपसे भीतर सोई हुई शक्तियों को जगने का मौका नहीं देते। विश्वास आत्मघाती है, क्योंकि विश्वास आपके विवेक और आपके विचार को जन्म नहीं देता है। डरने की कोई जरूरत नहीं रह जाती, कोई मौका नहीं रह जाता। लेकिन अगर आप सारे बिलिव्स को सारे विश्वासों को हटा दें तो क्या होगा? आप विवश हो जाएंगे विचार करने को। प्रतिक्षण विचार करने को विवश हो जाएंगे। एक-एक छोटी-छोटी चीज भी आपके भीतर विचार करने का मौका बन जाएगी, आपको सोचना ही पड़ेगा। क्योंकि बिना सोचे जीना असंभव हो जाएगा। बिना सोचे एक क्षण जीना असंभव हो जाएगा। विश्वास को हटा दें, आपके भीतर सोई हुई विचार की शक्ति में अदभुत जागरण शुरू होगा। जो सब विश्वासों को हटा देता है, वही विवेक को उपलब्ध होता है। मेरी दृष्टि में अब तक जो भी मनुष्य विवेक को उपलब्ध हुए हैं उन्होंने सब तरह के विश्वास को हटा कर ही विवेक को उपलब्ध किया है। अब हम नहीं हो सकते उपलब्ध। क्योंकि हम विश्वास को पकड़ते हैं। विश्वास को पकड़ते हैं आलस्य के कारण, भय के कारण। विश्वास को पकड़ते हैं कि बिना सहारे के क्या होगा। बिना सहारे के तो हम गिर जाएंगे! मैं आपसे कहता हूं कि बिना सहारे के गिर जाना भी किसी के सहारे से खड़े रहने से बेहतर है। क्योंकि तब आप गिरते हैं, कम से कम आप कुछ तो करते हैं, गिरते हैं। कुछ तो आपसे होता है। गिरना ही होता है लेकिन फिर भी वो कृत्य आपका है। और जब आप गिरते हैं तो उठने के लिए कुछ करेंगे ही। क्योंकि कौन गिरा रहना चाहता है? लेकिन जब आप सहारे के खड़े रहते हैं, तब वो कृत्य आपका नहीं है, खड़ा होना आपका नहीं है, वो किसी के सहारे पर है, वो झूठा है, वो खड़ा होना बिल्कुल मिथ्या है। अपना गिरना भी सच है, दूसरे के कंधे पर हाथ रखकर खड़े रहना भी झूठा है। इसलिए सारे सहारे छोड़ दें, अगर जीवन को पाना ही है, तो सारे सहारे छोड़ दें। हटा दें सारे विश्वासों को, और मौका दें कि आपके विचार की शक्ति सक्रिय हो जाए, काम में आ जाए। मौका दें एक कि आपके भीतर विचार पैदा हो जाए।
कभी अगर आप तैरना सीखना चाहते हों तो बेसहारे पानी में गिर जाना काफी है। और जो भी इस संबंध में जानते हैं और किसी को तैरना सिखाते हैं वो एक ही काम करते हैं कि आपको धक्का देते हैं। हर आदमी के भीतर अपने को बचाने की तीव्र आकांक्षा है, वही तैरना बन जाती है। लेकिन कोई अगर ये सोचता हो बिना तैरे पानी में कभी न उतरूंगा। तो फिर वह समझ ले कि वो तैरना कभी सीख नहीं सकता। एक दिन तो बिना तैराक, बिना तैरे जाने हुए पानी में उतरना ही होगा। एक दिन तो अज्ञात-अंजान पानी में कूदना ही होगा। उससे ही तैरने की क्षमता जगेगी लेकिन हमारा मन निरंतर सहारे खोजता है। सहारे खोजने वाला मन गुलामी खोज रहा है। जिसका भी हम सहारा खोजते हैं, उसके ही हम गुलाम हो जाते हैं। उसके ही हम गुलाम हो जाते हैं जिसका भी हम सहारा खोजते हैं। फिर चाहे वह

गुरु हो, चाहे अवतार हो, चाहे तीर्थंकर हों, चाहे भगवान हों, चाहे कोई भी हो। जिसका भी हम सहारा खोजते हैं उसके ही गुलाम हो जाते हैं। सब सहारा छोड़ दें, आपके भीतर वो मौजूद है जो जागेगा। आपके भीतर वो शक्ति छिपी है जो उठेगी। और बड़ी तीव्रता से उठेगी मन के तल पर यदि स्वतंत्र होने का निर्णय ले लें तो इस दुनिया में आपको आत्मा से जानने से कोई वंचित नहीं रख सकता है। लेकिन वो निर्णय लेना होगा कि मैं मन के तल पर स्वतंत्र होने का निर्णय करता हूं। मैं निर्णय करता हूं कि मैं अपने विचार के तल पर किसी की गुलामी को स्वीकार नहीं करूंगा। मैं निर्णय करता हूं कि मैं किसी का अनुयाई नहीं बनूंगा। कोई शास्त्र और कोई सिद्धांत मेरे मन पर बोझ नहीं बन सकेंगे। मैं केवल उसी सत्य को सत्य जानूंगा जिसे मैं पा लूंगा। अन्यथा मैं जानूंगा कि वो और किसी के लिए सत्य हो, मेरे लिए सत्य नहीं है। इतना साहस न हो तो जीवन को नहीं पाया जा सकता। क्योंकि इतना साहस न हो तो मन स्वतंत्र ही नहीं हो सकता। और ये भी आपसे निवेदन कर दूं बहुत दिनों की गुलामियां प्रीतिकर हो जाती हैं। बहुत दिन की जंजीरें सुखद लगने लगती हैं, उनके तोड़ने में घबड़ाहट होती है, छोड़ने में डर होता है। गुलामी के मिटने में जो सबसे बड़ी बाधा है, वह गुलाम खुद गुलामी को प्रेम करने लगता है। और कोई किसी दूसरे को स्वतंत्र थोड़े ही कर सकता है। गुलाम खुद गुलामी को प्रेम करने लगता है। यहां तक कि वो अपनी गुलामी को बचाने के लिए जान दे सकता है। गुलामों ने जानें दी हैं गुलामी को बचाने के लिए। सारी दुनिया में हजारों वर्ष से ये होता रहा है।
वेस्टील का किला फ्रांस के क्रांतिकारियों ने तोड़ रखा है, उस किले में बहुत से कैदी बंद थे। सैंकड़ों वर्षों से फ्रांस का सबसे पुराना किला था। और सबसे जघन्य अपराधियों को वहां बंद कर देते थे। जिनको अजन्म कारावास होता, उनको बंद कर देते। कोई तीस साल, कोई चालीस साल, कोई पचास साल से वहां बंद था। क्रांतिकारियों ने सोचा कि वहां जाएं और उसे तोड़ दें कितने में ही कैदी मुक्त होकर प्रसन्न हो गए। उन्होंने जाकर द्वार तोड़ दिए कोठियों से कैदियों को बाहर निकाला, उनके हाथों में जंजीरें, पैरों में जंजीरें थीं कोई चालीस साल से, कोई पचास साल से कोई बीस साल में कैद हुआ था अब अस्सी साल उसकी उम्र थी, साठ साल उसने जंजीरों में बिताए, उन्होंने जंजीरें तोड़ दीं और उन कैदियों से कहा कि जाओ अब तुम प्रसन्न हो, अब तुम मुक्त हो लेकिन वे कैदी ठगे से खड़े रह गए और उन्होंने कहा कि नहीं हम तो यहां ठीक हैं और हमें तो बाहर बहुत बुरा मालूम होगा। पचास साल हमने अंधेरी कोठियों में बिताए। ये अंधेरी कोठियां भी हमें प्रीतिकर हो गई हैं, हमारे घर हो गई हैं। बाहर तो बड़ा भय मालूम होता है, वहां क्या करेंगे। कौन खाने को देगा, कौन पीने को देगा। वहां मित्र परिजन तो वहां कोई भी नहीं हैं लेकिन क्रांतिकारी जिद्दी थे उन्होंने जबरदस्ती उनको बाहर निकाला। जबरदस्ती वे एक दिन भीतर लाए गए थे। जबरदस्ती उन्होंने उनको बाहर निकाल दिया। जब आए थे तब भी वे रो रहे थे कि हम भीतर नहीं जाना चाहते। जब निकाले जा रहे थे तब भी वे परेशान थे कि हम बाहर नहीं जाना चाहते। सांझ होते-होते आधे कैदी वापस लौट आए।
यह इतिहास की एक अदभुत घटना थी और उन्होंने कहा कि क्षमा करें, हम यहीं ठीक हैं। हमें बाहर अच्छा नहीं मालूम होता। नहीं अच्छा मालूम होगा। उन कैदियों ने कहा बिना जंजीरों के हाथ ऐसे लगते हैं जैसे नंगे हैं। बिना जंजीरों के ऐसे लगता है जैसे वजन खो गया है शरीर का। उनके बिना अच्छा नहीं लगता है। शरीर के तल पर जंजीरें हैं, मन के तल पर भी जंजीरें हैं, उनके बिना भी अच्छा नहीं लगता है।
अगर आपसे मैं कहूं कि थोड़ी देर के लिए हिंदू होना बंद कर दें तो भीतर बड़ी बेकली, जैन होना बंद कर दें, मुसलमान होना बंद कर दें। आदमी होना शुरू करें। हिंदू, जैन, मुसलमान, ईसाई सब गुलामियां हैं। ये होना बंद करें, तो भीतर बड़ी बेचैनी होगी और लगेगा कि बिना हिंदू हुए मैं हो ही कैसे सकता हूं? बिना मुसलमान हुए मैं हो ही कैसे सकता हूं? बिना किसी संप्रदाय से बंधे हुए मेरा होना कैसे होगा? मैं तो बड़ा खाली-खाली हो जाऊंगा। मैं तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाऊंगा। भीतर जंजीरें हजारों साल की हैं, वो मन को

जकड़े हुए हैं। थोड़ा सोचें, थोड़ा विचार करें, थोड़ा साहस जुटाएं, थोड़ा संकल्प करें। एक संकल्प जरूरी है धर्म की, सत्य की खोज के लिए। अगर वही किसी दिन पाना है, जिसे पाकर महावीर जिन हो जाते हैं, गौतम सिद्धार्थ बुद्ध हो जाते हैं। जीसस, क्राइस्ट हो जाते हैं। अगर वही किसी दिन पाना है तो स्मरण रखें कोई भी जंजीर घातक है, बाधा है।
वीत्से ने एक बात लिखी है, लिखा है कि पहला और अंतिम ईसाई सूली पर लटका
और मर गया। पहला और अंतिम। क्राइस्ट के बाबत लिखा है कि पहला और अंतिम क्रिश्चियन सूली पे मर गया तो ये बाद के क्रिश्चियनों का क्या हिसाब है? तो ये बाद के ईसाईयों के बाबत क्या मामला है। क्या हैं फिर बाद के ईसाई बाद के ईसाई ईसा नहीं हो सकते, क्योंकि ईसा होने के लिए सब तरह से स्वतंत्र व्यक्तित्व चाहिए। और ये तो ईसा के ही गुलाम हैं। महावीर के पीछे चलने वाला जैन कभी महावीर नहीं हो सकता। क्योंकि महावीर होने के लिए तो स्वतंत्र आत्मा चाहिए और यह तो महावीर का ही गुलाम है। बुद्ध के पीछे चलने वाला कभी बुद्ध नहीं हो सकता। असल में पीछे चलने वाला कभी भी कुछ नहीं हो सकता। क्योंकि पीछे चलने वाले ने एक बुनियादी उपद्रव कर लिया है, एक बुनियादी भूल कर ली कि वह किसी के पीछे गया, उसी क्षण उसने अपनी आत्मा को खोना शुरू कर दिया। उसने स्वतन्त्रता बेच दी, वो गुलामी के लिए राजी हो गया। तो आज की सुबह मैं ये निवेदन करना चाहता हूं। अविचार, विश्वास, श्रद्धा, आस्थाएं, बिलिव्स मनुष्य को, उसके मन को स्वतंत्र नहीं होने देतीं। परतंत्र बनाए रखती हैं। और परतंत्र जो मन है वो शरीर को ही जान सकता है, उसके ऊपर कुछ नहीं जान सकता। यदि मन स्वतंत्र हो जाए तो वो उसको जान सकता है जो हमारे भीतर परम स्वतंत्रता का जो मूल स्रोत है। जिसे हम आत्मा कहें, परमात्मा कहें, कुछ और कहें। स्वतंत्र मन ही स्वतंत्रता को जानने में समर्थ हो सकता है। स्वतंत्र मन ही स्वतंत्र आत्मा की तरफ आंखें उठा सकता है। परतंत्र मन परतंत्र शरीर की तरफ ही देखने में समर्थ हो सकता है।
मैंने कहा, शरीर अनिवार्य रूप से परतंत्र है, आत्मा अनिवार्य रूप से स्वतंत्र है। मन स्वतंत्र भी हो सकता है, परतंत्र भी हो सकता है। ये आपके हाथ में है कि मन कैसा हो स्वतंत्र हो या परतंत्र हो। अगर मन को परतंत्र ही रखना है तो आप शरीर के ऊपर कुछ भी नहीं जान सकेंगे और शरीर की मृत्यु होगी और मृत्यु के ऊपर आप कुछ भी नहीं जान सकेंगे। लेकिन यदि मन स्वतंत्र हो सके तो आत्मा जानी जा सकती है। और आत्मा अमृत है उसका तो न कोई जन्म है न कोई मृत्यु है। लेकिन ये भी मेरे कहने से नहीं हो सकता। ये मैं कहूं कि आत्मा का न कोई जन्म है न कोई मृत्यु है, तो आप दोहराएं तो खतरा हो गया है इसमें कोई अर्थ न रहा ये तो विश्वास हो गया।
मैं तो आपसे कहता हूं कि मानना ही मत आत्मा है। अभी यह भी मत मानना। अभी तो इतना ही जानना जरूरी है कि मेरा मन परतंत्र है। और इस आकांक्षा से स्वयं को भरना जरूरी है कि मैं इसे स्वतत्र करूंगा। जिस दिन मन स्वतंत्र होगा उसी दिन भीतर की आत्मा की झलक आनी शुरू हो जाएगी। जिस दिन मन पूरा स्वतंत्र होगा उस दिन आत्मा में प्रतिष्ठा हो जाएगी। वही जीवन है, वही अमृत है, वही है सारा मूल केंद्र। सारे जगत का, सारी सत्ता का, सारे अस्तित्व का, वही है छिपा अर्थ। लेकिन उस अर्थ को वे ही जान सकते हैं जो स्वतंत्र होने को तैयार हैं। जीवन सत्य को जानने के लिए स्वतंत्रता का मूल्य चुकाना अनिवार्य है। उसकी तैयारी है तो जीवन सत्य को जाना जा सकता है। नहीं तैयारी है तो मृत्यु के अतिरिक्त कुछ भी जानने का कोई उपाय नहीं है।
यह मैंने अविचार के संबंध में, विश्वास के संबंध में कुछ बातें कही हैं। कल कैसे ये मेरा चित्त, कैसे स्वतंत्र हो सकता है, उस दिशा में बात करूंगा, कल विचार के संबंध में बात करूंगा और परसों निर्विचार के संबंध में। चूंकि विचार एक सीढ़ी है उस पर रुक नहीं जाना है, उस पर पार हो जाना है। जैसे किसी छत पर हम चढ़ते हैं तो सीढ़ी पर जाते हैं लेकिन अगर हम सीढ़ी पर रुक जाएं तो फिर हम छत पर नहीं पहुंचते। सीढ़ी पर जाते भी हैं और सीढ़ी को छोड़ भी देते हैं। आत्मा तक पहुंचने के लिए अविचार से विचार पर जाना होगा और विचार

को छोड़ देना होगा। निर्विचार को उपलब्ध करना होगा। परसों सुबह मैं निर्विचार के बाबत बात करूंगा। इस संबंध में जो भी प्रश्न हों और खूब प्रश्न होने चाहिएं क्योंकि मैं कहता हूं संदेह करें। मेरी बात पर अगर संदेह न करें तो प्रश्न ही नहीं उठेंगे, संदेह करें तो प्रश्न उठेंगे। खूब संदेह करें, जितना संदेह कर सकते हैं, अंतिम रूप से संदेह करें। जितना संदेह करेंगे उतना आपके भीतर विचार का जागरण होगा। मैंने जो कहा है उसे मान न लें, उसे स्वीकार न कर लें, उस पर संदेह करें। मैंने जो कहा है उस पर संदेह करें और प्रश्न उठाएं सोचें और विचार करें। मैं यहां कोई आपको उपदेश देने को नहीं हूं। उपदेश से ज्यादा खतरनाक और कोई बात नहीं हो सकती। मैं यहां कोई उपदेश देने को नहीं हूं, मैं कोई नहीं हूँ, मैं कोई टीचर नहीं हूं। मैं तो आपके भीतर कुछ जगाने को हूँ, इसलिए आपको कोई सत्य दे सकता हूं, उपदेश नहीं। कोई शॉक दे सकता हूं, उपदेश नहीं। उस धक्के से आपकी नींद टूटे और शायद कुछ जमगे। शायद आपके भीतर कुछ परेशानी हो, कुछ बेचैनी हो, कुछ जगे। सुबह-सुबह मैं उठ कर बैठा एक मित्र ने आके कहा रात मैं कुछ सोचता रहा मृत्यु के बाबत, तो फिर तो मैं रात भर सो ही नहीं सका। और मैं इतना बेचैन और परेशान हो गया कि मुझे लगा कि ये तो बात ठीक है अगर मृत्यु है तो मैं जो भी कर रहा हूं, वह व्यर्थ है तो क्या फिर मैं निष्क्रिय हो जाऊं, क्या मैं सब करना छोड़ दूं? मैं खुश हुआ कि उनकी रात की नींद विलीन हो गई, आपकी पूरी जिंदगी से नींद चली जाए तो ये परमात्मा के लिए सबसे बड़ा धन्यवाद होगा। आपमें इतनी चिन्ता आ जाए, आपमें इतना संदेह आ जाए, आपमें इतना विचार जग जाए कि आप सो न पाएं, तो आपके जीवन में कुछ हो सकता है। लेकिन आप तो इतने निश्चिंत सो रहे हैं कि वो अब संभावना कर ले कि कुछ हो सके।
एक छोटी सी कहानी से मैं सुबह की चर्चा पूरी करूंगा।
भीखू एक गांव में गए थे। एक गांव में बोलते थे। संध्या को बोलते थे, जब बोलते थे तो सामने एक आदमी सोया हुआ था। शायद आसू जी उसका नाम था। तो उन्होंने बीच में उससे पूछा आसू जी क्या सोते हो? उसने जल्दी से आंख खोली और उसने कहा कि नहीं। नहीं कहां सोता हूं? कोई सोने वाला आदमी ये मानने को कभी राजी नहीं होता कि वो सोता है। सो यद्यपि वह सोता था लेकिन उसने जल्दी से आंख खोली और उसने कहाः नहीं मैं नहीं सोता हूं। फिर थोड़ी बात चली लेकिन सोने वाला कितनी देर जागेगा। वो फिर सो गया। भीखू ने उससे फिर कहा कि आसू जी सोते हो। फिर उसने आंख खोली अब कि बार उसने नहीं और जोर से कहा। क्योंकि अगर वह धीमे कहेगा तो संदेह की बात होगी अब कि बार और जोर से कहा कि बिल्कुल नहीं सोता हूं, आप क्या बार-बार सोने का कहते हैं क्योंकि और गांव के लोग भी थे तो अगर ये पता चले कि आसू जी सोता है तो बदनामी होगी। लेकिन इससे क्या होता था। थोड़ी देर फिर बात चली। फिर नींद आ गई उसे। भीखू ने जो पूछा बहुत अदभुत पूछा। भीखू ने पूछा आसू जी जीते हो। उसने कहा कि नहीं! क्योंकि नींद में उसने सुना था कि शायद वह फिर पूछते कि आसू जी सोते हो। उसने कहा नहीं, बिल्कुल नहीं। भीखू ने कहा कि अब तुमने बिल्कुल ठीक उत्तर दिया। जो आदमी सोता है, वह जीता भी नहीं। वो चाहे कितना ही कहे कि नहीं, नहीं उसके नहीं का कोई मूल्य नहीं। और फिर किसी से कहने का कोई सवाल नहीं है, ये तो अपने भीतर देखने और विचारने का सवाल है। कि क्या मैं जिंदगी में सो रहा हूँ। क्या मैं सोए चले जा रहा हूं, न कोई स्वप्न पैदा हो रहे हैं, न कोई चिंता पैदा हो रही है। न जीवन के संबंध में कोई बेचैनी पैदा हो रही है, न कोई असंतोष पैदा हो रहा है, न कोई अशांति पैदा हो रही है। लोगों ने आपसे कहा होगा कि धार्मिक आदमी शांत होता है, संतुष्ट होता है, मैं आपसे नहीं कहता। धार्मिक आदमी बहुत असंतुष्ट होता है, बहुत अशांत होता है। ये जीवन उसे एकदम असंतुष्ट कर देता है, ये जीवन उसे कहीं भी शांति नहीं मिलती। ये सारा जीवन उसे व्यर्थ मालूम पड़ता है। उसके भीतर गहरी पीड़ा पैदा होती है, गहरा संताप पैदा होता है, उसके सारे प्राण कंपने लगते हैं, उसके सारे प्राण चिंता से भर जाते हैं। उसी चिंता से, उसी चिंतन से, उसी विचार से उसके भीतर शुरुआत होती है किसी नई दिशा की, वो किसी नई खोज में जाता है। धन्य हैं वे जो असंतुष्ट थे। जो संतुष्ट थे वो तो करीब-करीब मर ही चुके थे। उनके भीतर कुछ होने की गुंजाइश नहीं थी। तो मैं आपको कोई उपदेश

नहीं देना चाहता। असंतोष देना चाहता हूं। और आपमें से बहुत से लोग इस खयाल में आए होंगे कि यहां शांति उपलब्ध करनी है। मैं आपको अशांति देना चाहता हूं। क्योंकि जो ठीक से अशांत नहीं होता वह कभी शांति को कभी पा ही नहीं सकेगा और जो ठीक से असंतुष्ट नहीं होता। संतोष उसके भाग्य में नहीं है। परमात्मा करे आप असंतुष्ट हो जाएं, आपकी नींद टूट जाये, आपको सब व्यर्थ मालूम होने लगे। आप जो कर रहे हैं वह आपको ठीक न दिखे, आप जहां चल रहे हैं, वो रास्ता, रास्ता न मालूम पड़े। आपके जो मित्र हैं वे मित्र न मालूम पड़ें, आपके जो संगी-साथी हैं, वे संगी-साथी न मालूम पड़ें। आपके जीवन में जो सहारे हैं वो सब टूट जाएं। आप बिल्कुल बेसहारा, असुरक्षित खड़े हो जाएं तो आपके भीतर विचार का जन्म हो सकता है।
इस संबंध में और जो प्रश्न होंगे, वह हम रात में विचार करेंगे।

चित चकमक लागै नहीं
तीसरा प्रवचन

स्वतंत्रता और आत्म-क्रांति

इधर बहुत से प्रश्न मेरे सामने आए हैं। सुबह की चर्चा में स्वतंत्र विचार के लिए जो मैंने निवेदन किया, अधिक प्रश्न उससे ही संबंधित थे। पूछा है कि यदि श्रद्धा न होगी तो सामान्य-जन का क्या होगा?

सामान्य-जन का बहुत विचार चलता है। सुबह भी मैं यहा से उठा और किसी ने मुझे कहा सामान्य-जनों का क्या होगा? ये तो भटक जाएंगे। जैसे कि सामान्यजन अभी भटका हुआ नहीं है। जैसे कि सामान्य-जन अभी जहां है, ठीक है। यह बात स्वीकार ही कर ली है जैसे कि सामान्य-जन बहुत ठीक स्थिति में है। और अगर श्रद्धा डिक गई, विश्वास हट गया तो भटक जाएगा! मेरी दृष्टि में तो इससे ज्यादा भटकी हुई हालत और कोई नहीं हो सकती जिसमें हम हैं। ये भी पूछा है कि अगर श्रद्धा और विश्वास उठ गया तब तो पतन और अनाचार फैल जाएगा।
जैसे अभी बहुत आचरण फैला हुआ है, आचार फैला हुआ है? जैसे हजारों साल से अनाचार नहीं है! अभी हम जिस स्थिति में हैं अगर वो अनाचार की नहीं है तो और अनाचार की कौन सी स्थिति होगी। क्या है हमारे जीवन में जिससे हम कह सकें कि यह पतन नहीं है? लेकिन फिर भी चूंकि वह हजारों वर्ष से चलता है, इसलिए हम उसके आदी हो गए हैं। और उससे भी डिग जाएंगे तो बहुत घबड़ाहट मालूम होती है। जैसे कि कोई बीमार आदमी पूछे कि अगर मैं दवा ले लूंगा और बीमारी चली जाएगी तो फिर क्या होगा? श्रद्धा और विश्वास का यस परिणाम हुआ है कि मनुष्य पतित है। क्योंकि पतन की पहली बुनियाद तो अंधेपन से शुरू हो जाती है। पतन का पहला आधार तो रख दिया अंधेपन ने। जिस व्यक्ति ने अपने सोच-विचार को उधार रख दिया उसके जीवन में अब पतन नहीं होगा तो और क्या होगा। जिसने अपनी निज गरिमा को, स्वयं के सोचने की स्वतंत्रता को ही समाप्त कर लिया, अब उसकी स्थिति पशुओं से बहुत बेहतर नहीं हो सकती है। पशु और मनुष्य में यदि कोई भेद है तो वह यही कि मनुष्य विचार करने में समर्थ है। और यदि हमने विचार करना बंद कर दिया और विश्वास कर लिया तो हम अनिवार्य रूपेण पशु की स्थिति में नीचे गिर जाते हैं।
जो विचार नहीं करता है उसके लिए पतन के अतिरिक्त और कोई मार्ग शेष नहीं रह जाता। यह श्रद्धा और यह विश्वास और ये सारा प्रोपेगेंडा जो हजारों साल से चला है उसने हमें इस हालत में लाकर छोड़ा है। ये पूछना कि सामान्यजन भटक जाएगा और भी एक अर्थ रखता है। जो भी यह पूछता है वह अपने को असामान्यजन मानता है। जो भी यह पूछता है वह दूसरों पर दया करके यह पूछता है। खुद तो उसे कोई भय नहीं है। वह तो बहुत विशिष्टजन है। बाकी सामान्यजन भटक जाएंगे!
और मुझे इधर लाखों लोगों से मिलने का रोज निरंतर मौका आ रहा है। अब तक मुझे एक भी जन ऐसा नहीं मिला जिसने ये कहा हो मैं सामान्यजन हूं। प्रत्येक को यही भ्रम है कि बाकी सारे लोग सामान्य हैं और मैं विशिष्ट हूं। हरेक मुझसे यही पूछता है कि सामान्यजन का क्या होगा। अभी तक ऐसा एक भी आदमी मुझे यह पूछता नहीं आया है कि मेरा क्या होगा?
ये सामान्य-जन कहां हैं, मैं भी खोजता हूं मुझे अभी तक मिला नहीं है। आपको मिले तो मुझे बतायें। ये कौन हैं, ये सामान्यजन कौन हैं, ये कॉमन पीपुल कौन हैं, ये चूजन फ्यू कौन हैं? ये चुने हुए थोड़े से लोग कौन हैं? यह सिर्फ अहंकार है कि मैं अपने को विशिष्ट समझूं शेष को सामान्य समझूं और हरेक के मन में ये अहंकार होता है कि वो तो विशिष्ट है शेष सब सामान्य हैं।
अरब में एक पुरानी कहावत है कि जब भी परमात्मा लोगों को बना कर दुनिया में भेजता है, तो हरेक के कान में एक गड़बड़ बात कह देता है। जब वह बना कर भेजने लगता है, तो उससे कह देता है कि तुझसे बेहतर आदमी मैंने कभी बनाया ही नहीं। और यह सभी से कह देता है। यह बात कुछ सच ही लगती है, ऐसा ही कुछ होता होगा। नहीं तो हरेक को यह भ्रम नहीं हो सकता।

गांधी जी गोलमेज कांफ्रेंस में भाग लेने लंदन, इंग्लैंड गए हुए थे। उनके सेक्रेटरी महादेव देसाई बर्नार्ड शॉ को मिलने गए। बर्नार्ड शॉ से महादेव ने कहा कि गांधी जी को आप भी तो महात्मा मानते होंगे। बर्नार्ड शॉ ने कहा मानता हूं लेकिन नंबर दो। नंबर एक तो मैं ही हूं। महादेव को बड़ा धक्का लगा। ऐसा खयाल उन्हें नहीं था, भारत में ऐसा कोई भी नहीं कहेगा कि नंबर एक मैं हूं। भीतर-भीतर सोचेगा, बाहर से कोई नहीं कहेगा। पीठ पीछे कहेगा, सामने कोई नहीं कहेगा। तो ये कल्पना महादेव को नहीं हो सकती थी कि कोई आदमी इतना सीधा-सीधा कह देगा कि गांधी नंबर दो महात्मा हैं, नंबर एक तो मैं हूं। बहुत दुखी वापस लौटे और गांधी को उन्होंने कहा। गांधी ने कहाः बर्नार्ड शॉ बहुत सच्चे आदमी मालूम होते हैं। जो हर आदमी के मन में लगता है, वही उन्होंने कहा है।
ये भ्रम सब के भीतर है कि मैं विशिष्ट हूं और दूसरे सब सामान्य हैं। इसलिए सब दूसरों की चिंता हरेक के मन में होती है कि इन सब सामान्यजनों का क्या होगा? इन बेचारों का क्या होगा?
मैं आपसे निवेदन करूं यह अहंकार अतिसामान्य बात है। यह खयाल कि मैं विशिष्ट हूं अतिसामान्य मनुष्य का लक्षण है। जो सच में विशिष्ट होते हैं उन्हें ये खयाल मिट जाता है कि मैं विशिष्ट हूं। जो सच में विशिष्ट होते हैं उन्हें ये खयाल मिट जाता है कि मैं विशिष्ट हूं।
साथ ही उन्हें ये भी खयाल मिट जाता है कि कोई सामान्य है। और अगर मुझसे पूछें कि सामान्य किसे कहें तो उसी को मैं सामान्य कहता हूं, जो स्वयं की बुद्धि पर और स्वयं के विचार पर विश्वास न करके, दूसरे की बुद्धि और दूसरे के विचार पर विश्वास करता है। वही सामान्य है। और अगर उसे सामान्य के घेरे से हटना है तो उसे पहली बात यह जो श्रद्धा और विश्वास का अंधापन है, ये छोड़ देना होगा।
जब मैं यह कहता हूं कि श्रद्धा और विश्वास का अंधापन छोड़ देना होगा,
तो उसका अर्थ है अपने पर विश्वास। जो व्यक्ति दूसरों पर विश्वास करता है अनिवार्यरूपेण स्वयं पर विश्वास नहीं करता है। स्वयं पर जो अविश्वास है, वही दूसरों पर विश्वास बन जाता है। मैं यदि अपनी शक्तियों पर कोई विश्वास नहीं करता, तो मैं दूसरों पर विश्वास करूंगा। और यदि मुझे अपनी शक्तियों पर कोई भी विश्वास हो तो मैं किसी दूसरे पर विश्वास नहीं करूंगा। आत्मविश्वास तो सहयोगी है लेकिन दूसरे पर विश्वास घातक है। और मैंने
जो विचार के लिए कहा वह इसी अर्थ में कहा है। जब मैं ये कह रहा हूँ कि अपने पैर पर खड़े हो जाएं। खुद सोचें, खुद चिंतन करें, खुद अनुभव करें तो मैं यह कह रहा हूँ, स्वयं पर विश्वास करें। लेकिन विश्वास शब्द का मैंने उपयोग नहीं किया जानकर, वो शब्द जहरीला हो गया है, विषाक्त हो गया है। उससे भ्रम होने का डर होता है। इसलिए मैंने कहा विचार करें, इसलिए मैंने कहा खुद का अनुसंधान करें। लेकिन प्रयोजन तो बहुत स्पष्ट है, प्रयोजन यह है कि मैं आपका जो विश्वास दूसरों पर है उस सबको चाहता हूं हट जाए और स्वयं पर आ जाए। आत्मविश्वास ही मार्ग बन सकता है आत्मा तक जाने का। और ये जो निरंतर मैं विरोध कर रहा हूं कि छोड़ दें औरों पर वो इसिलिए था कि स्वयं पर हो सके। कोई सामान्य नहीं है, जो व्यक्ति भी अपने पर विश्वास नहीं करता वही सामान्य है, वही रूग्ण है, वही बीमार है। और यदि आप मुझसे कहें कि सामान्य जन का क्या होगा, अगर वो अपने पर विश्वास कर लेगा, क्या होगा, बहुत शुभ होगा। डर हमें क्यों है ये, डर के पीछे भी कारण है। डर के पीछे कारण ये है कि सामान्यजन स्वच्छंद हो जाएगा, अनैतिक हो जाएगा, अनाचारिक हो जाएगा। नीति छोड़ देगा, धर्म छोड़ देगा। यह डर क्यों हैं। यह डर इसीलिए है कि मनुष्यों के ऊपर जो भी धर्म हमें आज दिखाई पड़ता है वह जबरदस्ती थोपा हुआ है। और जो भी नीति दिखाई पड़ती है वो जबरदस्ती उनके सिर पर बोझ की भांति रखी गई है। यदि उनको स्वतंत्र होने का मौका मिला तो इस बोझ को वे सबसे पहले उतार देंगे ये भय।
अगर स्वतंत्रता हमारी नीति को और धर्म को छीन लेती हो तो जानना चाहिए
कि वो नीति और धर्म झूठे होंगे। जो धर्म और नीति स्वतंत्रता के आने पर छिन जाएं, वे निश्चित ही झूठे होंगे। जो धर्म और नीति स्वतंत्रता के आने पर और

प्रगाढ़ और गहरे हो जाते हैं वे ही केवल वास्तविक हैं। चूंकि धर्म झूठा है, चूंकि नीति और आचार हमारे मिथ्या हैं। इसलिए यह भय है।
मनुष्य के ऊपर सारा धर्म थोपा हुआ और झूठा है। उसकी सारी नीति असत्य हैं। उसका आचरण उसकी आत्मा से उठा हुआ नहीं है। वरन किन्हीं भय और प्रलोभन के आधार पर जबरदस्ती पहना हुआ है, इसलिए डर है कि यदि मनुष्य का विचार स्वतंत्र हो तो अनैतिक हो जाने का डर है। यह डर इस बात की सूचना है कि मनुष्य अभी भी अनैतिक होगा।
स्वतंत्रता तो परीक्षा है।
हर चौराहे पर पुलिस का आदमी खड़ा है इसलिए आप चोरी नहीं करते। और अदालत में मजिस्ट्रेट बैठा हुआ है इसलिए आप चोरी नहीं करते। और वहां भगवान की अदालत भी बैठी हुई है जो नरक भेजती है और स्वर्ग भेजती है इसलिए आप चोरी नहीं करते। अगर ये सब अदालतें उठ जाएं और परमात्मा से लेकर पुलिसवाला तक विदा हो जाए तो बहुत डर है कि हम सब चोरी करेंगे। तब क्या इनके डर से जो हम चोरी नहीं कर रहे हैं वो नैतिकता है, वह धर्म है। क्या इनकी मौजूदगी इस बात का सबूत नहीं है कि हम नैतिक नहीं हैं।
नरक है, स्वर्ग है, भय है उस डर से आप चोरी नहीं कर रहे हैं, बेईमानी नहीं कर रहे हैं। क्या यह आपके नैतिक होने का प्रमाण है? नहीं नैतिक होने का एक ही प्रमाण होता है कि जब कोई भी भय न हो, तब भी आप नैतिक हो। जब कोई भी भय न हो तब भी आपके जीवन में शुभ का अवतरण हो। जब कोई भी प्रलोभन न हो तब भी आपके जीवन से सत्य और प्रेम बहे।
स्वतंत्रता ही एक मात्र कसौटी है कि मनुष्य नैतिक है या अनैतिक है।
सब भांति स्वतंत्रता ही इस बात की सूचना देगी कि हम कहां हैं?
और मैं आपसे ये भी निवेदन करूं, ये जो सारा भय है, सारे दुनिया के धार्मिक लोगों को कि जैसे-जैसे स्वतंत्रता आएगी वैसे-वैसे अनीति आएगी, ये एक तरह से ठीक है। क्योंकि उन्होंने हजारों वर्षों से झूठी नीति को मनुष्य के ऊपर थोपा है। मेरी दृष्टि में झूठी नीति के बजाय सच्ची अनीति शुभ होती है। मैं अपने को व्यर्थ ही सज्जन समझूं इससे मेरा दुर्जन होना ही ठीक है। कम से कम वो सत्य के निकट तो होगा। वो मेरी समझ सत्य के करीब तो होगी कि मैं चोर हूं। और अगर मुझे ये स्पष्ट बोध हो जाए कि मैं चोर हूं। तो मेरी चोरी के परिवर्तन की संभावना पैदा होती है।
यदि स्पष्टतः यह बोध हो जाए कि मनुष्य अब भी अनैतिक है और नैतिक नहीं
है और सभ्यता झूठी है और संस्कृति सब बकवास है। अगर यह बहुत स्पष्ट हो जाए तो हम मनुष्य के बाबत पुनर्विचार कर सकते हैं। स्वयं के बाबत, सबके बाबत, कोई नये मार्ग से जीवन को बदलने की दिशा खोजी जा सकती है। लेकिन जो लोग भ्रम में हों कि हम नैतिक हैं और आचारवान हैं और भीतर अनीति हो और अनाचार हो। उनके तो परिवर्तन के द्वार ही बंद हो गए।
विचार जब स्वतंत्र होगा। तो पहली बात तो ये होगी कि हम अपने संबंध में
जो तथ्य है, जो फैक्ट है उसका दर्शन करने में समर्थ होंगे। हममें से बहुत कम लोगों को अपने तथ्य का दर्शन होता है। हम सब अपने को कुछ समझे रहते हैं जो हम नहीं हैं। कोई आदमी खास ढंग के कपड़े पहन लेता है और सोचता है कि साधु है। कोई आदमी तिलक लगा लेता है, माला डाल लेता है, यज्ञोपवीत पहन लेता है और सोचता है धार्मिक है। कोई आदमी मंदिर हो आता है सुबह और सोचता है पुण्य कमा रहा है। यदि विचार स्वतंत्र होगा, तो हम इस बात को देखने में समर्थ होंगे कि इन सबमें क्या धार्मिकता है?
क्या किसी खास ढंग के वस्त्र पहन लेने से कोई साधु हो सकता है? या कि किसी खास ढंग के भोजन करने से कोई साधु हो सकता है? न तो खास ढंग के भोजन से कोई साधु होता है और न खास वस्त्रों के पहनने से। भोजन और वस्त्र अति क्षुद्र बातें हैं, साधुता बड़ी अदभुत और बड़ी कीमती बात है। इन क्षुद्र बातें से कोई साधु नहीं होता। हम अपने बाबत तथ्य भी नहीं जान पाते हैं। जो फैक्चुअलिटी है, वह भी नहीं जान पाते हैं क्योंकि विचार हमारा स्वतंत्र नहीं है।
और सारे लोग कहते हैं इस भांति के वस्त्र पहने हुए आदमी साधु है। हम
भी कहते हैं फिर एक दिन हम भी वैसे वस्त्र पहन लेते हैं और खुद को भी साधु

समझते हैं क्योंकि वैसे ही वस्त्रों में दूसरे लोगों को भी हमने साधु समझा था। और हमें इस बात का न स्मरण होता है, न इसकी पीड़ा होती है कि हम सोचें और विचार करें, इसमें साधुता क्या होगी।
सच तो यह है कि जिसे वस्त्रों में साधुता दिखाई पड़ती हो। उस जैसा मूढ़ व्यक्ति खोजना कठिन है और जिसे भोजन के परिवर्तन में साधुता दिखाई पड़ती हो, वह सिर्फ हंसने योग्य है और कुछ भी नहीं। मगर ये अत्यंत क्षुद्र बातें हमें दिखाई नहीं पड़ती क्योंकि दिखाई पड़ने के लिए स्वतंत्र विचार चाहिए। स्वतंत्र विचार हमें अपने तथ्यों को प्रकट कर देगा अगर भीतर नर्क है, तो नरक को खोल देगा। ऊपर से सुगंधित फूल लगा दिए हों इससे फर्क नहीं पड़ता, अगर भीतर पशु है तो वह पशु नग्न हो जाएगा, प्रकट हो जाएगा और जीवन में कोई गति नहीं हो सकती उस समय तक जब तक हमारी तथ्य का, हमारी वास्तविकता का हमें ठीक-ठीक दर्शन न हो।
मैं कहता हूं यह जानना अत्यंत नग्न रूप में आवश्यक है। अत्यंत नग्न रूप में मुझे जानना आवश्यक है, मैं कैसा हूं, क्या हूं तो ही कोई परिवर्तन संभव हो सकता है। और भी आश्चर्य की बात यह है कि जैसे आप अपनी नग्नता को पूरा जान लें आप फिर बिना परिवर्तित हुए नहीं रूक सकते हैं। असंभव है ये कि आप फिर रूक जाएं, अगर आपको दिखायी पड़ जाए कि आप चोर हैं लेकिन आपको दिखाई नहीं पड़ता। क्योंकि आप कुछ दान भी करते हैं और दानी हैं। चोरी दान में छिप जाती है। इसलिए सब चोर दान करते हैं। कोई चोर बिना दान किए नहीं बच सकता। क्योंकि दान में वह अपने चोर होने के तथ्य को छिपा लेगा। निश्चिंत हो जाएगा। उसे फिर अपनी नग्नता दिखायी नहीं पड़ेगी।
हम जहां-जहां गलत हैं, जो-जो हमारे भीतर व्यर्थ है, जो-जो हमारे भीतर अशुभ है। उसे-उसे छिपाने को हम बहुत उपाय कर लेते हैं। अधार्मिक आदमी जरूरी रूप से मंदिर चला जाता है। वैसे धर्म ओढ़ने की सुविधा हो जाती है। और खुद के लिए ये भ्रम पैदा करना आसान हो जाता है कि मैं अधार्मिक कौन? मैं तो अधार्मिक नहीं, जो नहीं मंदिर जाते हैं, वे सब अधार्मिक हैं, मैं तो धार्मिक हूँ। और इस भांति उसके भीतर जो अधर्म था उसे छिपाने का उपाय हो गया है।
ये जो हमारी सारी नीति है और हमारा सब आचार है, भीतर गहरी जो अनीति है उसको छिपाने से ज्यादा और कोई काम नहीं कर रहा है। इसलिए तो इतने मंदिर हैं, इतने मंदिर जाने वाले हैं लेकिन धर्म कहां है? इसलिए तो इतने धर्म हैं, इतने संन्यासी हैं। लाखों की तादाद में संन्यासी हैं सारी दुनिया में लेकिन दुनिया कितने गहन अनाचार में खड़ी है। इतने दिए जल रहे हों सारी दुनिया में। अभी कोई कल ही मुझे बता रहा था कि सिर्फ कैथेलिक साधु दुनिया में बारह लाख हैं।
थाईलैंड के बाबत एक मित्र आए थे वो मुझसे कह रहे थे थाईलैंड की आबादी
है चार करोड़ और संन्यासी हैं बीस लाख। हिंदुस्तान में भी पचास लाख की संख्या है। जहाँ जिस दुनिया में इतने संन्यासी हों, जिस दुनिया में इतने सत्पुरूष हों वहां तो प्रकाश ही प्रकाश फैल जाना चाहिए। जरूर ये दीये बुझे हुए होंगे तो गिनती में तो काम आ जाते हैं लेकिन प्रकाश में से कुछ भी निकलता नहीं है। शोरगुल मचाने में उपद्रव करवाने में काम आ जाते हैं। लोगों को लड़ाने में काम आ जाते हैं, इनसे कोई प्रेम पैदा नहीं होता है। और ये ही थोथी नीति हमें पकड़े हुए है।
आपका चित्त सोचने में समर्थ होगा तो आपको दिखाई पड़ेगा आप कहां हैं? हो सकता है वह मूर्ति बहुत रूचिकर न हो जो आपको अपनी दिखाई पड़े। हो सकता है वो बहुत कष्टप्रद हो! इतने दिन का धोखा टूटे तो आंख घबड़ा जाएं लेकिन इस पीड़ा से गुजरना ही पड़ेगा।
जिसको स्वयं को नया जन्म देना हो उसे प्रसव की पीड़ा झेलनी ही पड़ती है, पीड़ा से गुजरना ही होगा। अपने सारे वस्त्र उतारके, अपनी सब थोथी नैतिकता उतारके देखना ही होगा, मेरे भीतर क्या है और कौन है? वहां अगर पशु दिखाई पड़े तो जल्दी से फिर से नीति के वस्त्र पहनने की जरूरत नहीं है। क्योंकि उन वस्त्रों के कारण ही वह पशु जिंदा है और बचा हुआ है। उन वस्त्रों को उतार ही दें। जैसे हैं वैसे ही अपने को जानने को राजी हो जाएं तो शायद वह

तथ्य ही आपको इतनी पीड़ा देगा कि उसे बदलने को आपको राजी हो ही जाना पड़ेगा। कोई और मार्ग नहीं रह जाएगा।
अगर एक चोर स्पष्ट रूप से इस बात को जान ले कि मैं चोर हूं, अगर एक हिंसक स्पष्ट रूप से इस बात को जान ले कि मैं हिंसक हूं तो बहुत दिन तक उस हिंसा और चोरी के साथ रहना संभव नहीं है। जैसे कोई बीमारियों के साथ बहुत दिन तक मन नहीं रह सकता। स्मरण आ जाए कि मुझे बीमारी पकड़े है तो उपचार की चिंता शुरू हो जाती है।
ये तो बीमारियां और भी गहरी हैं, ये तो बीमारियां शरीर से कहीं बहुत गहरे मन को और प्राणों को भी स्पष्ट करती हैं, अगर इनका बोध हो जाए। लेकिन मनुष्य को बोध नहीं हो पाता। नहीं हो पाता इसलिए कि उसने बहुत सी तकरीबें लगा रखी हैं जिन तरकीबों में वो अपने मन को बहला लेता है और भुला लेता है और भीतर की बात भीतर पड़ी रह जाती है।
इसलिए जब भी ये सवाल उठता है कि हम उन सारी बातों को छोड़ कर सच जो है हमारे भीतर उसे देखने को राजी हों तो घबड़ाहट होती है कि उससे तो अनीति फैल जाएगी। उससे तो सब अनाचार फैल जाएगा। अनाचार होगा तो ही तो फैलेगा, अनाचार होगा तो ही तो प्रकट होगा, नहीं होगा तो कैसे प्रकट होगा।
इसलिए स्वतंत्र होने के लिए केवल वही समर्थ हो सकता है जो अपने भीतर छिपा हुआ पशु है उसे देखने को राजी हो, छिपाने को नहीं। और जो इतना साहस करता है कि अपने भीतर के पशु को देखने के लिए तैयार हो जाता है, मैं मानता हूं कि उसने पहला कदम उठा लिया है। उसने इतना साहस किया है कि अपने पशु को देखने की हिम्मत दिखलाई है, बहुत कठिन है कि वो दूसरा साहस भी न करे कि इस पशु से मुक्त होने का उपाय भी करे।
पशु से तभी मुक्त हुआ जा सकता है अनीति और अनाचार से जब हम उसके प्रति सजग हो जाएं। जो उसके प्रति सोए हुए हैं वे उससे कैसे मुक्त हो सकेंगे। अच्छा है कि दुनिया में सच्चे बेईमान हों, बजाय झूठे ईमानदारों के, तो
उस दुनिया में कुछ काम हो सकेगा, कोई परिवर्तन हो सकेगा। हम ऐसी दुनिया चाहते हैं जहां चोर हों तो वे साफ तो हों कि चोर हैं, वह कम से कम दान न करते हों, मंदिर न बनवाते हों। तो दुनिया में कुछ काम हो सकता है।
जो चक्कर है समाज के ऊपर वह यह है कि हमने कुछ झूठी तरकीबें निकाल ली हैं अपने को छिपाने की और उनको हम नीति कह रहे हैं, आचार कह रहे हैं। न तो वह नीति है और न वह आचार है।
एक आदमी रात को भोजन नहीं करता सोचता है अहिंसक हो गया है। हद मूर्खता
की बात है अहिंसक होना इतनी सस्ती बात है कि आप रात भोजन न करें। या कि पानी छान कर पी लें तो आप अहिंसक हो जाएंगे। अहिंसा तो इतनी बड़ी क्रांति है कि जब तक पूरी आत्माएं जाग न जाएं तब तक नहीं संभव है। लेकिन आपने सस्ती तरकीबें निकाल लीं और मामला हल हो गया आप अहिंसक हो गए। और जब इतना सस्ता अहिंसक होने की सुविधा हो तो फिर सच में अहिंसक होने को कौन तैयार होगा। कौन उस क्रांति से, पीड़ा से गुजरने के लिए तैयार होगा।
इसलिये घबड़ाहट होती है अगर विचार स्वतंत्र हुआ तो कहीं रात में कोई खाना न खाने लगे, अनाचार फैल जाएगा। जैसे कि दुनिया में रात में कोई खाना न खाएगा तो अनाचार फैल जाएगा। इतना सस्ता नहीं है, अनाचार बहुत गहरा है। आप कब खाते हैं, और क्या खाते हैं इस पर बहुत निर्भर नहीं है, आपके प्राणों तक बिछा हुआ है। घबड़ाहट होती है कि अगर हमने ऊपर से सब बातें छोड़ दीं और व्यक्ति स्वतंत्र हुआ तो वह न मालूम क्या खाने लगेगा, न मालूम क्या पीने लगेगा। न मालूम कैसे कपड़े पहनने लगेगा, न मालूम सड़कों पर गीत गाने लगेगा, मंदिर नहीं जाएगा, भजन नहीं गाएगा।
ये जो भय हमें व्याप्तता है, ये इसलिए व्याप्तता है, ये इस बात की सूचना है कि हमने हजारों वर्ष में जो भी नीति खड़ी की है। झूठी है और मिथ्या है।
जो नैतिक विचार मनुष्य को स्वतंत्रता देने के लिए राजी नहीं है, वो झूठा होगा। कसौटी स्वतंत्रता है कि मनुष्य स्वतंत्र हो और नैतिक हो तो ही नीति वास्तविक है। मैं समझता हूं कि जरूर ये होगा। ये होगा अगर आप स्वतंत्र होंगे तो चीजें उभरेंगी और साफ होंगी। लेकिन ये हितकर है कि

चीजें उभरें और साफ हों। आपके ठीक-ठीक निदान के लिए, ठीक-ठीक डायग्नोसिस के लिए, आपके ठीक-ठीक उपचार के लिए बीमारी का साफ-साफ स्पष्ट हो जाना जरूरी है। आपके घाव और फोड़े दिखाई पड़ने चाहिएं, छिपे हुए नहीं होने चाहिएं, तो उनका उपचार हो सकता है। फिर बिना उपचार किए रहना कठिन है।
अब तक जिन मनुष्यों ने भी वास्तविक आचरण को पाया है, वे वे ही हैं, जिन्होंने अपने वास्तविक अनाचरण को देखा है। जो लोग भी परमात्मा तक ऊपर उठ सके हैं, वह वे ही हैं, जिन्होंने नीचे घुसके अपने पशु को पहचाना है। जिसको आकाश छूना हो, उसे नरक तक अपनी जड़ों को खोज लेना जरूरी है। नहीं तो नहीं। जिसे ऊपर उठना हो उसे बहुत गहरे भीतर के सारे पशु को उघाड़ कर देख लेना आवश्यक है। इसके पहले कि आपको परमात्मा के दर्शन हों आपको पशु का दर्शन करना ही होगा। वो आपका तथ्य है, वो आपके भीतर मौजूद है, उससे भागके कहीं जा नहीं सकते।
इसलिए घबड़ाइए मत। स्वतंत्रता से मत घबड़ाइए। घबड़ाइए असत्य से। घबड़ाइए धोखे से। घबड़ाइए प्रवंचना से। घबड़ाइए सेल्फ डिसेप्शन से घबड़ाइए उस धोखे से जो हम अपने को दिए जा रहे हैं। घबड़ाइए उन वस्त्रों से जो हमने थोप रखे हैं अपने लिए और छुपा रखा है अपना चेहरा। राम का चेहरा लगाने से कुछ आप राम नहीं हो जाएंगे। भीतर जो है आप वही होंगे।
मैं मानता हूं कि पीड़ा उत्पन्न होगी अगर आप स्वतंत्र होने का निर्णय करेंगे। लेकिन पीड़ा को उत्पन्न होने दें अगर सच में ही आपको स्वयं को बदलने की कोई कल्पना, कोई अभिप्सा जगी है तो देखें जो भीतर है उसे स्पष्टतः देखें। अपनी सच्चाई से ठीक-ठीक परिचित हों। नहीं हो सकेंगे, जब तक कि परतंत्र होंगे विचार। नहीं ये हो सकता है।
भारत से एक भिक्षु कोई चौदह सौ-पंद्रह सौ वर्ष पहले चीन गया। वहां एक राजा था हू। उसने बहुत मंदिर बनवाए थे। बहुत मूर्तियां बनवाई बहुत ग्रंथ छपवाए थे। उसने भी सुना कि भारत से कोई बहुत अदभुत भिक्षु आता है, तो उसका स्वागत करने के लिए राज्य की सीमा पर आया। वह बहुत प्रसन्न था। जो भी भिक्षु इससे पहले आया था, उसने ही कहा था तुम अत्यंत धार्मिक हो, तुम बहुत पुण्यशाली हो, स्वर्ग तुम्हारा है। तो उसने इतने मंदिर बनाए थे। इतनी मूर्तियां बनवाई थीं, इतने शास्त्र छपवाए थे। इतने भिक्षुओं को मुफ्त भोजन करवाता था। वे ही भिक्षु जो मुफ्त भोजन करते थे, उसकी प्रशंसा भी गाते थे स्वाभाविक है। वे ही भिक्षु उसकी प्रशंसा भी गाते थे कि स्वर्ग बिल्कुल तुम्हारा है, तुम सुनिश्चित रहो। तुमने इतना अदभुत किया, इतना धर्म किया, स्वर्ग तुम्हारा है।
जब इस नये भिक्षु के आने की खबर सारे चीन में फैली तो वह गया। उसने उस भिक्षु का स्वागत किया। नाम था उसका बोधिधर्म, स्वागत करके उसने, तो उसे तो जल्दी ही इस बात की थी पूछने की। कि मैंने इतने मंदिर बनाए, इतने करोड़ों खर्च किए, इसका फल क्या है।
जैसे ही थोड़ा निश्चिंत हुआ, उसने एकांत में बौद्धिधर्म को पूछा, मैंने इतने मंदिर बनाए, इतना धर्म किया मुझे इससे क्या मिलेगा? बोधिधर्म ने कहा कुछ भी नहीं। और चूंकि तुम्हें मिलने का खयाल पैदा हो रहा है और चूंकि तुम्हें ये अहंकार पैदा हो रहा है कि तुमने इतना किया। इससे कुछ नुकसान जरूर हो सकता है। मिलेगा तो कुछ भी नहीं। वो तो बहुत घबड़ा गया। उसने कहा ये तो सारे भिक्षु कहते थे कि स्वर्ग तुम्हारा निश्चित है। भिक्षु तुम्हारा खाते थे इसलिए तुम्हारी प्रशंसा करते थे, बोधिधर्म
ने कहा। मैं तुम्हें सत्य कहता हूं तुम्हें कुछ भी नहीं मिलेगा। क्योंकि धर्म का तुमने क्या बनाया है, इससे कोई संबंध नहीं, कितनी मूर्तियां बनाई इससे कोई संबंध नहीं। कितने मंदिर खड़े किए इससे कोई संबंध नहीं। तुम्हारी आत्मा कितनी परिवर्तित हुई इससे संबंध है। क्या मंदिर बनाने से तुम्हारी आत्मा परिवर्तित हो जाएगी? क्या मूर्तियां खड़ी करने से तुम्हारी आत्मा परिवर्तित हो जाएगी? इससे तो कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। तुम्हारी आत्मा वहीं की वहीं है। जो इस जगत में बड़ा राज्य चाहती थी वही, अब बुढ़ापे में स्वर्ग का राज्य भी जीतने की तैयारी कर रही है, इसलिए मंदिर बनाती है। इस जगत में राज्य चाहिए था तो सैनिक तुम पालते थे, और उनको खिलाते थे मुफ्त।

उस जगत में राज्य चाहिए तो भिक्षु पालते हो और उनको मुफ्त खिलाते हो, फर्क कहां है? इस जगत में राज्य चाहिए था तो सीमाए बढ़ाते थे। उस जगत में स्वर्ग में राज्य चाहिए तो तुम दान करते हो। दया दिखलाते हो लेकिन ए सब झूठा है। ये तुम्हारे प्राणों से निकल नहीं रहा है। इसके पीछे भी वहां कुछ पाने की आकांक्षा वैसे ही काम कर रही है जैसे यहां कुछ पाने की आकांक्षा पैदा कर रही थी।
जिनका लोभ बहुत गहरा है वो पृथ्वी का ही राज्य पाके तृप्त नहीं होते।
वो स्वर्ग में भी राज्य चाहते हैं। यह जो तथाकथित धार्मिकता है, प्रलोभन पर खड़ी हुई कि तुम्हें स्वर्ग में पुण्य मिलेगा। और पाप करोगे, झूठ बोलोगे, बेईमानी करोगे तो नरक में दंड मिलेगा। ये जो दंड पर और प्रलोभन पर, ये जो फीयर पर भय पर खड़ी हुई नैतिकता है, ये असत्य है क्योंकि धर्म का पहला सूत्र अभय है, फीयरलेसनेस धर्म का पहला सूत्र भय नहीं है। जहां भय है वहां धर्म नहीं हो सकता, जहां अभय है, वहीं धर्म हो सकता है।
और अभय कौन हो सकता है? जो स्वतंत्र हो। जहां फ्रीडम है वहां फीयरलेसनेस हो सकती है। जहां स्वतंत्रता है वहां अभय हो सकता है। और जहां स्वतंत्रता नहीं है वहां अभय नहीं हो सकता वहां तो भय होगा। भय के कारण ही तो हम परतंत्र हैं। और ये जो प्रश्न आप पूछते हैं ये भी भय से ही उत्पन्न हुआ है कि अनीति न हो जाए, अनाचार न हो जाए, यह भी भय से ही उत्पन्न हुआ है। अनीति है, अनाचार है। होने की कोई संभावना अब नहीं है।
अगर कहीं भी कोई नरक है तो इस जमीन से बदतर नहीं हो सकता। और क्या इससे बदतर हो सकता है। चौबीस घंटे हम हिंसा में रत हैं। चौबीस घंटे हम बेईमानी में रत हैं। चौबीस घंटे हम धोखा दे रहे हैं। अपने को और सबको और जो बहुत समझदार हैं वे भगवान तक को धोखा दे रहे हैं। वो वहां प्रार्थना कर रहे हैं, स्तुति कर रहे हैं, भगवान तक को फुसला रहे हैं, खुशामद कर रहे हैं। वहां भी वो जाके जो भी उनसे बन सकता है जो इस दुनिया के रास्ते हैं, खुशामद के वो भगवान के साथ स्तुति करके कर रहे हैं, प्रार्थना करके कर रहे हैं कि तुम बहुत महान हो। तुम पतित पावन हो और हम तो पतित हैं। वो वहां खुशामद कर रहे हैं। वे वहां रिश्वत दे रहे हैं।
यहां दुनिया में सब तरफ धोखा है, मंदिर में धोखा है, धर्म में धोखा है,
सब तरफ बेईमानी है। और इस बेईमानी और इस धोखे की दुनिया में हम ये विचार करते हैं कि और कहीं अनैतिकता न आ जाए! अनैतिकता और क्या आएगी? प्रेम बिल्कुल भी मन में नहीं है, घृणा है, हिंसा है। इसलिए तो आए दिन युद्ध होता है। आए दिन कहीं न कहीं मनुष्य लड़ता है।
उधर मुझे किसी ने कहा कि तीन हजार साल मनुष्य के इतिहास में, साढ़े चार हजार बार युद्ध हुए हैं। ये कैसी दुनिया है कि हर रोज युद्ध हो रहा है। जब युद्ध नहीं हो रहा तो युद्ध की तैयारी हो रही है। शांति का अब तक कोई वक्त मनुष्य के इतिहास में नहीं जाना गया है। दो तरह के वक्त हमने जाने हैं युद्ध का वक्त और युद्ध की तैयारी का वक्त। शांति का अभी तक कोई वक्त किसी मनुष्य समाज ने नहीं जाना है। या तो लड़ते हैं या लड़ने की तैयारी करते हैं। जब तक लड़ने की तैयारी करते हैं तब तक समझते हैं कोल्ड वॉर चल रहा है। और जब लड़ने लगते हैं तो हॉट वॉर शुरू हो जाती है लेकिन दोनों वक्त लड़ाई चल रही है। चौबीस घंटे लड़ाई चल रही है। हर आदमी एक दूसरे आदमी से लड़ रहा है।
जहां भी महत्वाकांक्षा है वहां चौबीस घंटे लड़ाई होगी। आप बैठे हैं यहां निश्चिंत लेकिन हर आदमी का हाथ दूसरे आदमी की जेब में है। आप बैठे हैं निश्चिंत लेकिन हर आदमी दूसरे आदमी की गर्दन दबाए हुए है। चौबीस घंटे ये चल रहा है और इसको हम कहते हैं ये बड़ी नैतिक दुनिया है। ये नैतिक दुनिया है इसमें कहीं अनाचार न आ जाए मनुष्य के स्वतंत्र होने में। ये मनुष्य की परतंत्रता का फल है और अगर इसे तोड़ना ही है तो साहस करके मनुष्य को स्वतंत्र करने की कोई न कोई चिंता करनी आवश्यक हो गई है। मनुष्य स्वतंत्र हो, अभय हो, सच्चाईयों को जाने, पहचाने तो जरूर ही जो अशुभ है, उसके परिवर्तन की आकांक्षा पैदा होनी शुरू होती है।
अशुभ का दर्शन, अशुभ के परिवर्तन का कारण बन जाता है। इसलिए मैं नहीं देखता कि स्वतंत्रता से कोई भी अशुभ फलित हो सकता है। बाकी सब बातें

परतंत्रता को स्थापित रखने के कारण खोजती हैं। परतंत्रता बनी रहें इसलिए सामान्यजन की बातें की जाती हैं। इसलिए मनुष्य बिगड़ न जाए इसकी बातें खोजती हैं। सब कोई मालिक गुलामों को छोड़ने को राजी नहीं होता। वो यही कहता है कि गुलाम छूट जाएंगे, तो बड़ी मुसीबत में पड़ जाएंगे। यह तो हमारी वजह से मजे में हैं, अगर ये छूट गए तो दिक्कत और कठिनाई इन पर आएगी। सब मालिक यही कहते हैं, मालिक की यही भाषा है।
शोषक की यही भाषा है कि शोषित स्वतंत्र न हो जाए। सारे दुनिया के धर्म-पुरोहित राजनेता इस बात में सहमत हैं कि मनुष्य को स्वतंत्रता की कोई आवश्यकता नहीं है। मनुष्य जितना परतंत्र हो उतना ही अच्छा होगा। अगर मनुष्य बिल्कुल विचार बंद कर दे करना तो बहुत अच्छी बात है। इसके बाबत भी वह चिंतन करते हैं कि मनुष्य का सब विचार ही बंद हो जाए। तो माइंड-वॉश के लिए कोई उपाय खोजते हैं कि कोई चिंतनशील आदमी हो तो उसके मन की सफाई करके कैसे उसके मन को कोरा कर दिया जाए। नसकलीम और एलैफ्टी जैसे ड्रग्स खोजते हैं कि आदमी इनको पीने लगे तो उसमें चिंतन समाप्त हो जाए।
सारी दुनिया में जो शोषित हैं चाहे वो राज्य का अधिकारी हो, चाहे धर्म
का ही, दो ही बड़े गहरे शोषक हैं, उन सबकी यही इच्छा है कि मनुष्य में स्वतंत्रता का कोई विचार पैदा न हो। क्योंकि स्वतंत्र और विचारपूर्ण मनुष्य सारी दुनिया में क्रांति का कारण हो जाएगा। ये सड़ी-गली समाज फिर नहीं चल सकती। ये सड़ी-गली दुनिया से बरदाश्त नहीं की जा सकती। इसमें बहुत क्रांति हो जाएगी, इसमें बहुत आग लग जाएगी, इसमें बहुत सी चीजें तोड़ देनी पड़ेंगी। बहुत भय मालूम होता है, इसलिए मनुष्य सोच न पाए।
इसलिए जो टोटेरेटियन मुल्क हैं जहां की तानाशाही है, वहां तो उन्होंने चिंतन को बंद ही कर दिया है। चिंतन इसका मतलब मौत। सोचो कि गोली मारो। आज नहीं कल सारी दुनिया में वो इसी कोशिश में हैं कि सोचो मत, खाओ-पीयो मकान में रहो, रेडियो सुनो, अखबार पढ़ो लेकिन सोचो मत। क्योंकि सोचना बड़ी खतरनाक बात है। सोचना बड़ी विद्रोही बात है।
जहां चिंतन है, वहां विद्रोह है और इसलिए वह पच्चीस उपाय खोजते हैं कि कभी सोचना मत। हम जो कहें उसे मान लो, राजनीतिज्ञ भी यही कहता है कि हम जो कहें उसे मान लो, धर्म पुरोहित भी यही कहता है कि हम जो कहें उसे मान लो। सारी दुनिया में सभी सत्ताधिकारी यही कहते हैं कि हम जो कहें उसे मान लो क्योंकि सोचने में खतरा है। खतरा आप को नहीं है, खतरा उनकी सत्ता को है, खतरा उनकी शोषण की दुकान को है। इसलिए वह इसकी सारी व्यवस्था करते हैं, हजारों दलीलें खोजते हैं।
लेकिन स्मरण रखें, स्वतंत्रता से बड़ा कोई मूल्य नहीं है। और स्वतंत्रता के विरोध में जो भी कहा जाता हो वह जरूर कुछ न कुछ खतरनाक है। और मनुष्य के हित में नहीं हो सकता। स्वतंत्रता तो परमात्मा तक पहुंचने का द्वार है और जीवन में जो भी सुंदर है और जो भी शुभ है वो केवल स्वतंत्र चेतना ही पा सकती है परतंत्र चेतना नहीं पा सकती।

दूसरे प्रकार के प्रश्न भी कुछ इसी बात से संबंधित हैं।
पूछा है कि समाज में ही व्यक्ति का जन्म होता है। समाज ही उसे शिक्षा देता है, समाज ही उसे पालता और पोसता और बड़ा करता है। तो व्यक्ति समाज से स्वतंत्र कैसे हो सकता है?

ठीक लगती है यह बात, समाज में आपका जन्म होता है। लेकिन जो जन्मता है
वह समाज से नहीं आता। जो आपके भीतर है वो समाज से आया हुआ नहीं है। बुद्ध बारह वर्ष बाद वापस जब अपने घर, अपने गांव में लौटे तो सारा गांव उनके स्वागत को गया, उनके पिता भी गए। बारह वर्ष बाद उनका लड़का वापस लौटता था। सारा गांव तो उस लड़के का स्वागत करने गया था, पिता अपना क्रोध प्रकट करने गए थे। क्योंकि पिता को ये भ्रम था कि यह मेरा लड़का, मुझसे आया, मुझसे बिना पूछे भाग गया।
जाके उन्होंने पहली बात जो बुद्ध को कही वो यही कि मेरे द्वार अब भी खुले हैं अगर तू क्षमा मांगने को राजी हो और वापस लौट आए। तो मैं अभी क्षमा

कर सकता हूं और मेरे दिल में बहुत दुख होता है ये बात देख कर कि हमारे वंश में, हमारे कुल में कभी किसी ने भिक्षा नहीं मांगी। तेरे हाथ में भिक्षा का पात्र देख कर मेरे प्राण छटपटाते हैं। तू राजपुत्र है, तुझे भिक्षा मांगने की जरूरत नहीं। यह हमारे कुल में, हमारे वंश में कभी नहीं हुआ। पता है बुद्ध ने क्या कहा, बुद्ध ने कहाः आप भूल करते हैं, मैं आपसे आया जरूर लेकिन आपके कुल का नहीं हूं। आप एक चौरस्ते की भांति थे जिस पर से मैं आया लेकिन मेरी यात्रा अलग से चल रही है, बहुत पहले से। मैं आपसे पैदा हुआ लेकिन आपका नहीं हूं और आपके कुल में भिक्षा नहीं मांगी गई होगी जहां तक मुझे खयाल है, मेरे कुल में हमेशा भिक्षा ही मांगी गई है। जहां तक मुझे स्मरण है मैंने हमेशा भिक्षा मांगी है, आपके कुल में न मांगी गई होगी। मैं आपसे पैदा हुआ लेकिन आपका ही नहीं हूं।
समाज में आप पैदा हुए हैं, लेकिन जो आपके भीतर है वो समाज का नहीं है। समाज ने आपको शिक्षा दी है, समाज ने आपको भोजन दिया है लेकिन आत्मा नहीं। और अगर इस भोजन, इस शिक्षा और इस वस्त्र को ही आप आत्मा समझ लेंगे तो फिर डूब जाएंगे।
आत्मा इससे कुछ और भिन्न और पृथक है। उसकी खोज के लिए समाज की सारी जंजीरों से ऊपर उठ जाना जरूरी है। इसका यह मतलब नहीं है कि मैं आपसे यह कहता हूं कि रास्ते पर लिखा है बाएं चलो तो आप दाएं चलने लगें। यह मैं नहीं कह रहा हूं कि आप रास्ते पर दाएं चलने लगें या बीच रास्ते पर चलने लगें, यह स्वतंत्रता नहीं है, यह तो मूर्खता होगी। इन नियमों को तोड़ने के लिए नहीं कह रहा हूं।
कि सारे लोग दो पैर से चलते हैं तो आप दोनों हाथ पैर से चल कर स्वतंत्र
हो जाएं। चारों हाथ पैर से चलने लगें और स्वतंत्रता की घोषणा करने लगें। ये मैं नहीं कह रहा हूं। इस तल पर नहीं कह रहा हूं। शरीर के और समाज की औपचारिकता के तल पर नहीं कह रहा हूं। कह रहा हूँ, उस तल पर वह जो आपके भीतर बहुत गहरा तल है विचार का। वहां मुक्त हों, वहां देखना शुरू करें, वहां अंर्तदृष्टि को जगाएं, वहां सोचना शुरू करें। वहां चिंतन जन्मे, वहां होश आए कि मैं जो सोचता हूं, करता हूं वो कहां तक उचित है, कहां तक ठीक है? वहां समाज आपको न पकड़ पाए कल अगर आप हिंदू हैं और कोई आके आपसे कहे कि चलो मस्जिदों में आग लगाओ क्योंकि ये धर्म का काम है तो उस वक्त आप विचार करें कि क्या मस्जिदों को जलाना धर्म का काम हो सकता है।
या कल कोई मुसलमान, आप मुसलमान हैं और आपसे आके कहे कि चलो हिंदुओं के मंदिरों की मूर्तियां तोड़ो, यह धर्म का काम है? उस वक्त आप सोचें ये सड़क पर बाएं चलने की बात नहीं रही अब। उस वक्त आप सोचें कि क्या यह उचित है, क्या यह धर्म हो सकता है कि हम कोई मंदिर जलाएं और कोई मूर्ति तोड़ें?
जब कोई धर्म आपसे कहे कि लड़ो और दूसरे को दुश्मन मानो तब सोचना जरूरी
है कि क्या धर्म घृणा और हिंसा सिखा सकता है तब विचार करना जरूरी है। और समाज से मुक्त होना जरूरी है।
अगर दुनिया के युवक समाज से इस अर्थों में मुक्त हो सकें तो दुनिया में न कोई युद्ध का मकारण है, न कोई हिंसा का कारण है, न भारतीय को पाकिस्तानी से लड़ाया जा सकता है, न हिंदू को मुसलमान से लड़ाया जा सकता है। क्योंकि तब ये निकट गंवारियां, बेवकूफियां मालूम होंगी। और तब ज्ञात होगा कि हजारों वर्षों से आदमी ये क्या नासमझियां करता रहा है। इस तल पर स्वतंत्र होना जरूरी है।
जब कोई आपसे कहे कि ये किताब सत्य है। इसको मानो और पूजो और इसके इधर-उधर जरा भी चिंतन मत करना। तब सोचना जरूरी है कि क्या कोई किताब किसी मनुष्य को सत्य दे सकती है। क्या किताब के पन्नों में और शब्दों में सत्य मिल सकता है अगर मिल सकता होता दुनिया में कब का सत्य सबको मिल गया होता। कितनी किताबें हैं, कितने धर्म ग्रंथ हैं लेकिन जिन लोगों के सिर पर जितने धर्मग्रंथ हैं वे उतने ही जीवन में व्यर्थ मालूम पड़ते हैं। तो चिंतन की जरूरत है कि क्या सत्य किताब से मिल सकता है या कि मुझे खुद खोजना होगा? अगर कोई आपसे किताब लाकर देकर कहे तकि इस किताब को सम्हाल कर रखो बस इस किताब में जो है उससे तुम्हें प्रेम मिल जाएगा तो आपको शक होगा कि इस

किताब से कैसे प्रेम मिल जाएगा। प्रेम तो जब हृदय में जागेगा तो मिलेगा। सत्य भी जब हृदय में जागेगा तो मिलेगा।
इन सारे तलों पर सोचने की जरूरत है। एक पत्थर की मूर्ति रख कर कोई कहता है कि भगवान हैं, इनकी पूजा करो तो चिंतन उठना जरूरी है। कोई किसी झाड़ को पूज रहा है, कोई किसी मंदिर में मूर्ति को पूज रहा है, कोई किसी किताब को पूज रहा है। सोचना जरूरी है कि क्या ये भगवान हैं। और क्या ये पूजा केवल अज्ञान नहीं होगी। या कि मैं खोजूं और जानूं कि कहां है जीवन-स्रोत। कहां है सारे जगत का जीवन स्रोत कहां छिपा है मैं उसे खोजूं कि एक पत्थर को लेकर बैठ जाऊं।
यहां चिंतन की, यहां विचार के मुक्त होने की जरूरत है।
तो आपसे यह नहीं कह रहा हूं कि आप खाने-पीने के मामले में, कपड़े पहनने
के मामले में, सड़क पर चलने के मामले में, कोई समाज से स्वतंत्र हो जाएं, यह तो सब सामाजिक घेरा है, यह कोई आत्मा का स्थान नहीं है।
लेकिन चित्त के तल पर, विचार के तल पर आपकी दृष्टि सजग हो, सोचपूर्ण हो, विचार करती हो, खुद निर्णय लेती हो, और जहां अंधी बात दिखाई पड़ती हो वहां ठहरना जानती हो, रुकना जानती हो, अस्वीकार करना जानती हो। जहां कोई सार्थक बात दिखाई पड़ती हो, अर्थपूर्ण, जीवन को ऊंचा ले जाने वाली, वहां स्वीकार करना जानती हो। जहां कोई व्यर्थ घृणा में, हिंसा में, अज्ञान में, अंधेरे में ले जाने वाली बात दिखाई पड़ती हो वहां अस्वीकार करना जानती हो, ऐसी स्वतंत्र विचार की बुद्धि के लिए आपसे निवेदन किया हू।
ये कोई कपड़े छोड़ कर, खाना बदल कर, कोई रास्ते पर उलटा-सीधा चलने को नहीं कह रहा हूं आपसे। यह तो समाज का तल है, उस तल पर कोई सवाल नहीं है। उस पर कोई बंधन भी नहीं है। बल्कि आप बाएं चलते हैं इसी वजह से चल पाते हैं, अगर दाएं या बीच में चलेंगे तो चल भी नहीं पाएंगे। समाज के जो नियम हैं आम जिंदगी को चलाने के उनसे कुछ नहीं कह रहा हूं। लेकिन चिंतन के, सत्य की खोज के और जीवन की खोज के जहां सवाल हैं, जहां आत्मा तक पहुचने का सवाल है, वहां-वहां सोचना पड़ेगा, वहां विचार करना पड़ेगा, वहां स्वतंत्र होना पड़ेगा और वहां स्वतंत्र होंगे तो ही उसको पा सकते हैं, जो समाज से नहीं आता, समाज से बहुत पहले है, समाज के बहुत बाद है। जो मां-बाप से पैदा नहीं होता। इसलिये मां-बाप की दी गई कोई भी शिक्षा समाज की दी गई कोई भी शिक्षा आत्मा का ज्ञान नहीं बन सकती। उस ज्ञान के लिए तो अत्यंत स्वतंत्र ऊर्जा की खोज और अनुसंधान आवश्यक है।
मैं समझता हूं मेरी बात आपको खयाल में आई होगी। और बहुत से प्रश्न हैं, कल और परसों उनके बाबत बात करूंगा।
अब हम ध्यान के लिए थोड़ी देर बैठेंगे।

नोटः मोर मैटर इन ओल्ड बुक चित चकमक लागै नहीं, नंबर तीन--स्वतंत्रता
और आत्म-क्रांति

चित चकमक लागै नहीं तीसरा प्रवचन लास्ट पार्ट

थोड़ी सी बात समझ लें।
ध्यान भी चित्त की परिपूर्ण स्वतंत्रता में जाने का प्रयोग है। बाहर
जो भी है उसमें हम इतने व्यस्त हैं, भीतर जो है उस पर न दृष्टि जाती है, न ध्यान जाता है। बाहर जो है उसमें ही हम व्यस्त नहीं हैं, बल्कि उसकी जो जो प्रतिक्रियाएं हमारे मन में होती हैं उसमें भी हम बहुत आकुपाइड और घिरे हुए हैं। अगर अकेले भी कहीं बैठ जाएंगे तो भी वही सोचेंगे जो भीड़ ने आपको दिया है। मित्रों की सोचेंगे, शत्रुओं की सोचेंगे, धंधे की साचेंगे, कुछ और सोचेंगे। लेकिन सोच विचार जारी रहेगा। और आप अकेले नहीं हो पाएंगे। भीतर सारा सोच विचार विलीन हो जाए। भीतर सारी चिंता शांत और शून्य हो जाए। भीतर कोई भी तरंग न उठती हो, ऐसा घनीभूत मौन हो जाए, ऐसी साइलेंस, ऐसी शांति वहां भीतर आ जाए कि वहां कोई लहर भी चित्त में न उठती हो। ऐसी स्थिति का नाम ध्यान है।

आप कहेंगे, यह तो बहुत मुश्किल है। यह तो बहुत कठिन है। क्योंकि चित्त
तो एक क्षण को भी शांत नहीं होता, मौन नहीं होता। वहां तो कुछ न कुछ काम जारी है कोई न कोई विचार कोई न कोई बात, कोई न कोई स्मृति वहां काम कर रही है। भविष्य या अतीत कोई न कोई पकड़े हुए है। वहां तो चौबीस घंटे काम है। शरीर तो कभी विश्राम भी करता, वहां कोई विश्राम नहीं है। रात सोते हैं तो सपने चलते रहते हैं। दिन जागते हैं तो न मालूम कौन कौन सी चिंताएं और विचार चलते रहते हैं।
तो कैसे यह होगा? और कई आपमें से बैठे होंगे माला लेकर और यह नहीं हुआ होगा। और कई बैठे होंगे, नाम-स्मरण किया होगा और नहीं हुआ होगा। और कई ने प्रार्थनाएं की होंगी और मंत्र पढ़े होंगे और यह नहीं हुआ होगा। तो और यह ख्याल पैदा हो गया होगा कि यह तो बहुत कठिन बात है। यह बात कठिन नहीं है। आप जो करते हैं वह गलत है इसलिए नहीं हो पाता।
माला फेरते हैं, मन शांत नहीं होगा। क्योंकि माला फेरने से और शांति
का कुछ भी संबंध नहीं है। और राम राम जपेंगे तो मन शांत नहीं होगा क्योंकि यह जपना भी एक अशांति है। यह खुद एक उपद्रव है। एक आदमी बैठा हुआ है राम-राम-राम कहता रहे तो यह अशांत होने का लक्षण हुआ। आप अगर कुत्ता-कुत्ता करते रहे या बिल्ली-बिल्ली, तो आपको लोग पागल कहेंगे। लेकिन राम राम कहते रहें तो लोग कहेंगे कि बड़ा धार्मिक है।
मामला बिल्कुल एक ही जैसा है। कोई फर्क नहीं है। किसी एक शब्द को बार बार दोहराना जड़ता का लक्ष्ण है। उससे भी मन शांत नहीं होगा। हां, हो सकता है बहुत अगर जिद्दी हो और लगे ही रहें तो मन सो जाए। लेकिन सो जाने में और शांत होने में बहुत अंतर है।
छोटे बच्चे को सुलाना होता है, मां एक ही कड़ी गुनगुनाने लगती है--सो जा मुन्ना सो मुन्ना, या कुछ बकवास करने लगती है। उसको शायद यह खयाल पैदा होता होगा कि बड़ा गीत मधुर है इसलिए बच्चा सो रहा। बच्चा ऊब जाता है, बोर हो जाता है। थोड़ी देर में एक ही कड़ी सुनते-सुनते सो जाता है। यह बोर्डम का फल है, थोड़ी देर में एक ही कड़ी सुनते सुनते सो जाता है। यह बोर्डम का फल है, यह कोई गीत का फल नहीं है। यह कोई आपके गीत के माधुर्य का परिणाम नहीं है। यह बच्चा ऊब गया आपकी बकवास से। एक ही शब्द लगाए हुए हैं, लगाए हुए घबड़ा गया, सो गया। ऐसे ही राम राम जपते रहें तो चित्त घबड़ा जाए ऊब जाए, तो सो जाएगा।
उस सोने को आप शांति मत मानना। वह तो अफीम से भी मिलती है, शराब से भी मिलती है। इन दोनों में फर्क नहीं है। अफीम से भी मिलती है, शराब से भी मिलती है और कोई नये इंजेक्शन हैं उनसे भी मिलती है। हजार दवाइयां हैं सो जाने के लिए। उसी भ्रांति की ये बहुत पुरानी, बहुत प्रचलित दवाइयां हैं। कोई भी एक शब्द को लेकर दोहराते जाएं, मन ऊब जाएगा, घबड़ा जाएगा। अगर उस ऊबने के पहले ही आप उठ जाएं तो बात अलग है। अगर लगे ही रहे, लगे ही रहे तो सो जाएगा। सो जाने के बाद जब आप जागेंगे आपको लगेगा कि बड़ी शांति हुई। वह नींद थी, वह शांति नहीं थी। वह एक भ्रांति के शब्द को बार बार दोहराने से पैदा हो जाती है। उसमें कोई बड़ी खूबी की बातनहीं है। इन सब बातों को मैं ध्यान नहीं कहता हूं। ये कोई भी ध्यान नहीं है।
फिर मैं किस बात को ध्यान कहता हूं? मैं कहता हूं परिपूर्ण जागृति को ध्यान; नींद को नहीं, सो जाने को नहीं। अभी हम जो ध्यान करेंगे वह जागृति का एक प्रयोग है। चारों तरफ जो भी हो रहा है उसके प्रति पूरी तरह जाग कर बैठे रहना है। कोई पता हिलेगा, कोई पक्षी आवाज करेगा, कोई कुत्ता भौंकेगा, कोई बच्चा रोएगा, कोई खांसेगा, कोई कुछ होगा, चारों तरफ बहुत सी आवाजें होंगी। और जैसे जैसे आपका चित्त शांत होगा, धीमी धीमी आवाजें भी सुनाई पड़नी शुरू जो जाएंगी। कोई छोटा मोटा पक्षी जो पूर्णतया अभी आपको सुनाई नहीं पड़ रहा, वह भी सुनाई पड़ेगा।
चारों तरफ एक दुनिया है घटनाओं की, इन घटनाओं के प्रति पूरी तरह जाग
कर बैठे रहना।

चित चकमक लागै नहीं
चौथा प्रवचन

विचार

मेरे प्रिय आत्मन्!
बीते दिवस और विचारों की स्थिति। सामान्यतः मनुष्य व अविचार में जीता है। एक तो वासनाओं की परतंत्रता है। और दूसरी श्रद्धा और विश्वास की। शरीर के तल पर भी मनुष्य परतंत्र है और मन के तल पर भी। शरीर के तल पर स्वतंत्र होना संभव नहीं है लेकिन मन के तल पर स्वतंत्र होना संभव है। इस संबंध में थोड़ी सी बातें कल मैंने आपसे कही थीं। मन के तल पर मनुष्य कैसे स्वतंत्र हो सकता है। कैसे उसके भीतर विचार का जन्म हो सकता है। उस संबंध में मैं आज आपसे बात करूंगा।
विचार का जन्म न हो तो मनुष्य के जीवन में वस्तुतः न तो कुछ अनुभूति
हो सकती है न कुछ सृजन हो सकता है। तब हम व्यर्थ ही जीएंगे और मरेंगे, जीवन एक निष्फल श्रम होगा। क्योंकि जहां विचार नहीं वहां आंख नहीं, जहां विचार नहीं वहां स्वयं के देखने और चलने की कोई शक्ति भी नहीं। और जो स्वयं नहीं देखता, स्वयं नहीं चलता, स्वयं नहीं जीता, उसे कोई अनुभूति, जो उसे मुक्त कर सके, कोई अनुभूति जो उसके हृदय को प्रेरित कर सके, कोई अनुभूति जो उसके प्राणों को आरोपित कर सके, असंभव है!
जीवन में कुछ भी हो उस होने से पहले आंखों का होना जरूरी है। विचार से मेरा अर्थ है दृष्टि, विचार से मेरा अर्थ है, स्वयं की सोचने की क्षमता। विचार से मेरा अर्थ, विचारों की भीड़ नहीं है। विचारों की जो भीड़ हम सबके भीतर है। लेकिन विचार हमारे भीतर नहीं है। विचार तो बहुत हमारे भीतर घूमते हैं। लेकिन विचार की शक्ति तो हमारे भीतर जाग्रत नहीं है। और ये बहुत आश्चर्य की बात है कि जिसके भीतर जितने ज्यादा विचार घूमते हों, उसके भीतर विचार की क्षमता उतनी ही कम होती है। जिसके भीतर विचारों का बहुत ऊहापोह हो, विचारों का बहुत आन्दोलन हो, भीड़ है उसके भीतर विचार की शक्ति सोई रहती है। केवल वही व्यक्ति विचार की शक्ति को उपलब्ध होता है। जो विचारों की भीड़ को विदा देने में सफल होता है। इसलिए बहुत विचार आपके मन में चलते हैं, तो ये मत समझ लेना कि आप विचार करने में समर्थ हो गए। बहुत विचार चलते भी इसलिए हैं कि आप विचार करने में समर्थ नहीं हैं। एक अंधा आदमी किसी भवन के बाहर जाना चाहे तो उसके भीतर पच्चीस विचार चलते हैं कैसे जाऊं, किस द्वार से जाऊं, कैसे उठूं, किससे पूछूं? लेकिन जिसके पास आंख हैं उसे बाहर जाना है तो वह उठता है और बाहर हो जाता है। उसके भीतर विचार नहीं चलते। उठता है और बाहर हो जाता है। उसे दिखाई पड़ रहा है। विचार की शक्ति दर्शन की क्षमता है। जीवन में दिखाई पड़ना शुरू होता है लेकिन विचारों की भीड़ से कोई दर्शन की क्षमता नहीं होती बल्कि विचारों की भीड़ में दर्शन की, देखने की क्षमता छिन जाती है। वह ठहर जाती है। और ये भी प्रथम में निवेदन कर दूं फिर हम विचार की शक्ति कैसे चलें, उस पर विचार करेंगे। ये भी कर लेना जरूरी है कि विचारों की भीड़ में जो विचार होते हैं वो पराए होते हैं, अपने नहीं। और इसलिए जब मैं कह रहा हूं कि विचार का जन्म हो, तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप शास्त्रों को पढ़ें, ग्रंथों को पढ़ें और बहुत से विचार इकट्टे कर लें उससे आपके भीतर विचार का जन्म नहीं होगा। पंडित हो जाना विचार को पा लेना नहीं है। बहुत सी बातें समाहित कर लेना, बहुत से सिद्धांत, बहुत से उत्तर, बहुत से दर्शन, बहुत सी फिलासफी जान लेना, विचार करना नहीं है। विचार करना क्या है? विचार करने का अर्थ है, जीवन की समस्या के प्रति, स्वयं की चेतना का जागना। जीवन की समस्या का समाधान स्वयं की चेतना से उठना। जीवन जब प्रश्न खड़े करे, लेकिन उत्तर हमारे उधार होते हैं। इसीलिए जीवन की कोई समस्या कभी हल नहीं होती। समस्या हमारी समाधान दूसरों के। उनका कहीं कोई मेल नहीं होता। जीवन हर रोज प्रश्न खड़े करता है, जीवन रोज समस्याएं खड़ी करता है, लेकिन हमारे पास दलीलें तैयार उत्तर हैं, जो दूसरों ने दिए हैं।

उन उत्तरों को लेकर हम जीवन के सामने खड़े होते हैं। समस्याएं जीत जाती हैं, समाधान गिर जाते हैं।
एक छोटी सी कहानी कहूं, उससे शायद ये समझ में आ सके कि हमारे समाधान कैसे बासी और पुराने हैं। और क्यूं हार जाते हैं? एक गांव में दो मंदिर थे। दोनों मंदिरों में बहुत विरोध था। सभी मंदिरों में विरोध है। गांव में जुआघर होते हैं शराबघर होते हैं... उनमें कोई विरोध नहीं है। लेकिन मन्दिर होते हैं उनमें विरोध है। होना नहीं चाहिए। लेकिन मंदिरों में सदा से विरोध है... जिस दिन विरोध नहीं होगा उस दिन परमात्मा का मंदिर बन सकेगा। जब तक विरोध है तब तक नहीं बन सकता है। तब तक नाम परमात्मा का होगा अन्य मूर्तियां परमात्मा की होगी। लेकिन उनमें छिपा हुआ शैतान होगा। क्योंकि विरोध शैतान का अस्त्र है। उस गांव में भी मंदिरों में विरोध था विरोध इतना पुजारी एक दूसरे को देखते ही नहीं थे। विरोध इतना था कि उन दोनों के मंदिरों के भक्त इक दूसरों के मंदिरों के लिए जाते ही नहीं थे। उनके शास्त्रों में लिखा था कि चाहे पागल हाथी के पैर के नीचे दब कर मर जाना लेकिन दूसरे के मंदिर में शरण मत लेना। वह मंदिर पागल हाथी के पैर के नीचे दब जाएं लेकिन ये बदतर था पत्थर उन दोनों मंदिरों के बड़े पुजारियों के पास दो छोटे-छोटे लड़के थे, जो उनकी सेवा-टहल करते रहते। सामान ले आना कुछ और काम कर देना। दोनों बच्चें थे इसलिए बूढ़ों का रोग उन्हें अभी नहीं पकड़ा था। इसलिए दोनों कभी रास्तों पर आते-जाते मिल भी लेते थे, बात भी कर लेते थे। बूढ़ों की बीमारियां, न पकड़े तो डर लगता है कि बच्चे भटक जायेंगे इसलिए दोनों मंदिर के पुजारी उन दोनों को निरंतर सचेत करते थे, कि सावधान कभी दूसरे के मंदिर की तरफ मत जाना। कभी दूसरे के मंदिर के किसी आदमी से बात मत करना। लेकिन बच्चे तो बच्चे थे अभी बूढ़े नहीं हुए थे और उनमें अभी समझ नहीं आई थी, वह कभी-कभी मिल जुल लेते थे। एक दिन दोनों बच्चे बाजार की तरफ गए थे रास्ते पर मिले। दोनों मंदिरों का नाम था एक उत्तर का मंदिर था एक दक्षिण का। उत्तर के मंदिर के लड़के ने दक्षिण के मंदिर के लड़के से पूछा कहां जा रहे हो? दक्षिण के लड़के ने कहाः जहां पैर ले जाएं। वह उत्तर के मंदिर वाला लड़का थोड़ा मुश्किल में पड़ गया। अब और क्या बात आगे करें। उसने जो कहा था जहां पैर ले जाएं, बात थोड़ी अटक गई, वह लौट कर आया और अपने मंदिर के पुजारी को कहा कि आज मैं थोड़ा पराजित हो गया दूसरे के मंदिर के लड़के से। मैंने पूछा था कहां जा रहे हो? उसने कहा जहां पैर ले जाएं, तो मुझे कुछ न सूझा।
मंदिर के पुजारी ने कहाः यह तो बहुत बुरा हुआ। उस मंदिर के नौकर का यह हाल है, बड़ी बुरी बात है। कल तुम तैयार होना फिर तुम यही पूछना कहां जा रहे हो वह कहेगा जहां पैर ले जाए। तो फिर तुम कहना कि अगर तुम्हारे पैर न होते तो फिर जीवन में कहीं जाते कि न जाते? तब वह डर जाएगा, तब उसे कुछ समझ नहीं पड़ेगा। कल वही हुआ उस लड़के ने जाकर पूछा कहां जा रहे हो? लेकिन आज उत्तर बदल गया था। दूसरे लड़के ने कहाः जहां हवाएं ले जाएं।
अब वह मुश्किल में पड़ गया बंधा हुआ उत्तर तो तैयार था लेकिन अब वह कैसे कहे कि अगर तुम्हारे पास पैर न होते तो कहां जाते? वह फिर वापस लौट आया उसने पुजारी को कहा मैं तो बहुत मुश्किल में पड़ गया। वह लड़का तो बहुत विद्वान है। उसने तो उत्तर बदल लिया। पुजारी ने कहा ये तो बहुत बुरा है, कल तुम फिर पूछना वह कहेगा जहां हवाएं ले जाएं। तुम कहना अगर हवाएं न होती तो तुम जीवन में कहां जाते? वह फिर वहां गया। फिर मिला वह उसने पूछा कहां जा रहे हो? लड़के ने तो उत्तर बदल लिया उसने कहा मैं बाजार सब्जी लेने जा रहा हूं। और तब मैं फिर हार के आया हूं।
जीवन भी रोज बदल जाता है। कल के उत्तर आज काम नहीं पड़ते हैं। और हम सबके पास कल के उत्तर होते हैं। वो उत्तर सिखाए हुए उत्तर। शास्त्रों के उत्तर, सिद्धांतों के, परम्पराओं के, हजारों वर्षों की जड़ता के उत्तर, वह हमारे पास होते हैं। उनको भी लेकर हम रोज-रोज जीवन के सामने खड़े हो जाते हैं जीवन रोज बदल जाता है। तब हम जीवन को दोष कहेंगे कि ये तो बहुत बेईमान है। और दोष न देंगे अपनी जड़ता को कि हम जड़ हैं। जीवन की चंचलता दुख नहीं है हमारी जड़ता दुख है। इसलिए जीवन से मेल नहीं पाता।

जहां जीवन है वहां चांचल्य है, जहां जीवन है वहां गति है। जहां जीवन
है वहां बदलाहट है, परिवर्तन है, वहां प्रतिक्षण सब नया है। वहां प्रतिक्षण सब नया होता चला जाता है। जहां मृत्यु है, वहां जड़ता है। जहां मृत्यु है, वहां परिवर्तन नहीं है। जहां मृत्यु है वहां कोई प्रतिक्षण क्रांति नहीं है। वहा सब ठहरा और रूका हुआ सब बंद। जीवन है खुला, जीवन है मुक्त। उसकी चंचलता के प्रति क्रोध न करें। अपनी जड़ता को देखें। उसके बदलते हुए रूपों के प्रति चिंता न करें। अपने न बदलते हुए मन को विचार करें। ये जो हमारा मन है, जो ठहर जाता है, समाधानों को पकड़ लेता है, शास्त्रों को पकड़ लेता है, वह जीवन को जीतने में और जानने में असमर्थ हो जाए तो कोई आश्चर्य नहीं। वो जीवन के साथ नहीं खड़ा हो पाता है, जीवित हो पाता है हम पिछड़ जाते हैं, एक कदम पीछे पड़ जाते हैं और ये जीवन दुख और बोझ बनने लगता है। फिर यह असफलता बनने लगती है। विचार का अर्थ है, जीवन जितना गतिमान है चित्त भी उतना ही गतिमान हो। लेकिन आपने सुना होगा कि चित्त की गति बहुत बुरी चीज है। आपने सुना होगा कि चित्त की चंचलता बहुत बुरी चीज है। आपने तो पढ़ा होगा और सुना होगा कि चित्त चंचल है ये ही तो उपद्रव है। आपने सुना होगा कि चित्त की चंचलता रोको, चित्त को ठहराओ, चित्त की गति को मारो, चित्त जितना रुक जाए उतना ही अच्छा है। मैं आपसे निवेदन करता हूं कि चंचलता सुख है लेकिन चंचलता इतनी तीव्र हो गति इतनी तीव्र हो कि जीवन की गति से उसका मेल हो जाए वह जीवन से पीछे न हो। जितना मूवमेंट होगा, जितनी गति होगी चित्त के पास, चित्त उतना शक्तिशाली होगा तो चित्त को जड़ नहीं करना है। माला फेर कर और राम-राम करके उसे जड़ नहीं कर लेना उसे ठहरा नहीं देना है। क्योंकि ठहरे हुए चित्त से तो कुछ भी पैदा नहीं होता। जिन कोनों के रहता है हम हमेशा उन पर भी ये दुर्भाग्य पड़ा हैं कि वो उन्होंने चित्त को जड़ता की तरफ ले जाने की आकांक्षा और कोशिश की उन कोनों से न तो विज्ञान का जन्म हुआ, न अविष्कार पैदा हुए न कोई सृजन हुआ। वे कोना हजारों वर्ष बांझ की तरह जीएंगे, उनसे कुछ पैदा नहीं हुआ, कुछ नई खोज नहीं हुई। न ही हो सकती कैसे होगी, चित्त की गति को हम मार देंगे तो हम एक जड़ता को बांधेंगे और जीवन जड़ के लिए नहीं, बल्कि अत्याधिक चेतन के लिए है। चित्त में गति हो, चित्त रुक न जाए जड़ समाधानों पर बल्कि समस्याओं के साथ गति करने में समर्थ हो। विचार का अर्थ है गतिवान चित्त। विचार का अर्थ है समस्या खड़ी हो तो इस माटी में उत्तर न खोजूं क्योंकि जो स्मृति में उत्तर खोजेगा उसके उत्तर बासी होंगे।
अगर मैं आपसे पूछूं कि क्या ईश्वर है? और आप अपनी स्मृति में खोजें कि मैंने पढ़ा था कि गीता में कि ईश्वर है, मैंने पढ़ा था कुरान में या मैंने सुना था। या मेरे पिता कहते थे, और मेरे पिता के पिता कहते थे कि ईश्वर है। यह उत्तर मेमोरी से आएगा, स्मृति से आएगा, इसलिए जड़ होगा, बासा होगा, उधार होगा। दूसरों से स्मृति को हटा दें जब जीवन प्रश्न खड़ा करे स्मृति को न बोलने दे, स्मृति को कहे क्षमा करो या स्मृति बिल्कुल चुप होगी। आप की चेतना को अपना ही उत्तर खोजना पड़ेगा। हो सकता है कोई उत्तर न मिलें। हो सकता है कोई उत्तर न आए वह भी बहुत शुभ होगा। तो ही चेतना जगेगी। उस उत्तर की खोज में जगेगी। उस उत्तर के अनुसंधान में चेतना की परतें खुलेंगी और चेतना जागृत होगी। कोई उत्तर न आए। लेकिन जल्दी से स्मृति के उत्तर को स्वीकार कर लेने से चेतना के जगने का कोई कारण नहीं रह जाता। कोई उपाय नहीं रह जाता जो काम चेतना को करना चाहिए वह यह माटी कर देती है और तब चेतना को उठने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। चेतना का काम चेतना पर छोड़ दें, स्मृति से ना लें तो विचार का जन्म होता है। लेकिन हम सब तो स्मृति से काम लेते हैं हम तो हर बार स्मृति से पूछते हैं कि उत्तर आ जाए। हमारे विद्यापीठ वे भी यही सिखाते हैं स्मृति सिखाते हैं। हमारे धर्म शास्त्र भी, हमारे धर्म पुरोहित भी स्मृति सिखाते है। वे सब सिखाते हैं कि उत्तर सीख लो और जब प्रश्न खड़े हों तो उत्तर दे देना। लेकिन इसमें तुम्हारी, इसमें व्यक्ति की आत्महत्या हो जाती है। स्मृति के उत्तर यांत्रिक हैं, मैकेनिकल हैं। वे चेतना से आए हुए न होने से वे चेतना को न तो विकसित करते हैं ना बढ़ाते हैं बल्कि मारते हैं। कुंठित करते हैं। ये तो आपने सुना होगा

कि अब तो मशीनें हैं जिनमें हर तरह के उत्तर भरे जा सकते है, वो हर तरह के उत्तर देने में समर्थ हैं। बहुत जल्द मनुष्य को बहुत ज्यादा बातें याद करने की जरूरत नहीं रह जाएगी। सारी बातें मशीनों को फीड की जा सकती हैं। और फिर उनसे उत्तर लिए जा सकते हैं।
आपकी स्मृति भी एक यंत्र है। और शायद आपको ये भी जान कर आश्चर्य होगा
कि बहुत जल्द एक आदमी की स्मृति दूसरे आदमी को भी दी जा सकेगी। उस संबंध में भी सफल प्रयोग हुए हैं। मनुष्य की पूरी स्मृति एक दूसरे आदमी को भी दी जा सकती है। क्योंकि यह स्मृति तो एक यंत्र है। और स्मृति तो भीतर एक रासायनिक परिवर्तन है। अगर वो मस्तिष्क के सारे तत्वों को जिनमें जाके स्मृति संग्रहीत होती है निकाल के दूसरे के मस्तिष्क में डाला जा सके तो बिना किसी कारण के, बिना किसी खुद अध्ययन के वह सारी की सारी स्मृति उससे बोलनी शुरू हो जाएगी। अभी इस संबंध में प्राथमिक वैज्ञानिकों के प्रयोग सफल हुए हैं। एक व्यक्ति का अनुभव दूसरे व्यक्ति को ट्रांसफर किया जा सकता है बिना उस व्यक्ति को कोई अनुभव दिए। एक व्यक्ति की स्मृति उसके सारे रासायनिक दृव्यों को लेकर दूसरे के मस्तिष्क में पहुंचाई जा सकती है। स्मृति तो बिल्कुल यांत्रिक हैं, वो ज्ञान नहीं है। वो अनुभव नहीं है, आपका वस्तुतः वह तो संगृहित कोष है। जैसे धन तिजोरी में इकट्टा होता रहता है और तिजोरी उठाके किसी दरिद्र को दे दी जाए, तो वो धनी हो जाएगा। वैसे ही स्मृति में विचार इकट्टे होते रहते हैं। आज तक ये सम्भव नहीं था कि हम दे सके लेकिन अब सम्भव है और बहुत जल्दी बहुत सरल रूप से संभव हो जाएगा। कितनी भी स्मृति उठा के दूसरे व्यक्ति को दी जा सके। पंडितों के मरने पर तब कोई कठिनाई नहीं होगी। उनके मरते ही उनकी सारी स्मृति उन बच्चों को दे देंगे। और तब पांडित्य जैसी कोई थोथी चीज नहीं रह जाएगी, जो बाजार में बिक सके अभी भी बाजार में बिकती है। अभी भी कोई बहुत मूल्य की बात नहीं है, अभी आप दोहराते हैं किन्हीं चीजों को स्मरण कर लेते हैं। ये दोहराने का काम भी मशीनें करती हैं, कर सकती हैं। मस्तिष्क में स्मृति यांत्रिक क्रिया है। उससे कोई ज्ञान का जन्म नहीं होता। उससे कोई विचार का जन्म नहीं होता। बल्कि स्मृति निरंतर विचार को पैदा न होने देने का कारण होती है। जल्दी ही विचार का मौका आता है स्मृति उत्तर दे देती है, और विचार का जन्म नहीं हो पाता।
जीवन पूछता है प्रश्न, स्मृति दे देती है उत्तर। चेतना चुप रह जाती है। होना चाहिए उलटा, जीवन पूछे प्रश्न स्मृति चुप हो चेतना को, उत्तर खोजने पड़ें। इसलिए विचार की शुरुआत में, विचार की दिशा में जरूरत होने से पहले इस पहले सूत्र को समझ लेना उपयोगी है। अपनी स्मृति को चुप होना सिखाएं। अपनी स्मृति को मौन होना सिखाएं। अपनी स्मृति को हर बार हर समस्या के लिए उत्तर देने के लिए मत कहें। ये मैं नहीं कह रहा हूं कि छोटी- मोटी बातों में, कि आपका घर कहां है और आपका नाम क्या है ये भी आप चेतना पर छोड़ दें। ये मैं नहीं कह रहा हूं कि यहां से लौटते वक्त आप खड़े हो जाएं और सोचने लगें कि मेरा घर कहाँ है और स्मृति को मौन कर दें। नहीं ये मैं नहीं कह रहा हूं। एक तल पर स्मृति उपयोगी है, पदार्थ के तल पर, संसार के तल पर, इंजीनियरिंग या डाक्टरी पढ़नी हो तो उस तल पर स्मृति उपयोगी है। आत्मज्ञान के तल पर स्मृति घातक है। स्मृति की उपयोगिता है। सभी यंत्रों की उपयोगिता होती है। स्मृति की भी उपयोगिता है। जो जीवन का सामान्य तल है उस पर स्मृति उपयोगी है। वह न हो तो जीवन असंभव होगा। लेकिन जीवन का बहुत गहरा तल है। जो सरफेस है उसको छोड़ दें, तो जो गहराइयां हैं जीवन की वहां स्मृति का कोई भी उपयोग नहीं हैं। वहां स्मृति के दिए हुए उत्तर एकदम झूठे हो जायेंगे। वहाँ तो स्मृति को मौन हो जाना चाहिए। जो हमने सीखा है उसे चुप हो जाना चाहिए। जो हमने सुना है उसे मौन बैठे रहना चाहिए। ताकि हम स्वयं खोज सकें कि क्या है? ताकि हम खुद जान सकें कि क्या है? ताकि अनुसंधान हो सके ताकि खोज हो सके ताकि हम स्वयं प्रतिष्ठ हो सकें और उस अज्ञात से परिचित हो सकें वो जो अज्ञात सत्य है, अज्ञात जीवन है अज्ञात आत्माएं हैं, परमात्मा है, उसे जानने के लिए स्मृति को चुप हो जाना आवश्यक है। विचार के जन्म के लिए स्मृति को मौन होना चाहिए। जहाँ भी जीवन की गहरी

समस्याएं सामने खड़ी हो वहां अपनी स्मृति को कहें चुप हो जाओ। वहाँ स्मृति बीच ना आए उसे विदा कर दें। वहाँ स्मृति भूलने लगे उसे कहें मौन। ताकि मेरी स्वयं की चेतना खोज कर सके।
विचार के जन्म के लिए पहला सूत्र स्मृति को मौन सिखाना आवश्यक है। स्मृति निरंतर बोलती रहती है और जीवन के सामान्य कामों में चूंकि वो काम पड़ जाती है इसलिए यह भ्रम पैदा होता है कि जीवन की गहरी खोज में भी वो काम पड़ जाएगी। वहां वह काम नहीं पड़ सकती। पहली बात और जैसे ही स्मृति की मौन करने की बात स्पष्ट हो जाए वैसे ही सारे शास्त्र सारे सिद्धांत मौन हो जाएंगे क्योंकि वे स्मृति नहीं हैं। वैसे ही सब तीर्थंकर और सब अवतार मौन हो जायेंगे क्योंकि वे स्मृति नहीं हैं वैसे ही दुनिया की सारी ज्ञान सभ्यता मौन हो जाएगी क्योंकि वो स्मृति नहीं है। तब छूट जायेंगे आप अकेले खोजने को। तब रह जाएगी अकेली आप की चेतना खोज करने को। और जब उस पर खोज का प्रश्न खड़ा हो जाए और जब अनुसंधान की तीव्र प्रेरणा खड़ी हो जाए और जब कोई विकल्प न हो दूसरा और खोज करनी ही पड़े उसी स्थिति में खोज शुरू होती है उसी दबाव में उसी प्रेरणा में खोज शुरू होती है। और प्राण तत्पर होते हैं। जो काम भी हम दूसरों से लेते हैं उस काम के लिए हमारे प्राण धीरे-धीरे सुप्त और सो जाते हैं। यदि हम सारे काम दूसरों से ले सकें तो हमारे प्राण बिल्कुल सो जायेंगे। धीरे-धीरे हम सारे काम दूसरों से ले रहे हैं। ठीक भी है शरीर के तल पर दूसरों से काम ले लिया जाए, लेकिन आत्मा के तल पर दूसरों से काम लेना तो बहुत घातक है।
कनफ्यूशियस ने लिखा है कि मैं एक गाँव में गया तो ढाई हजार साल पहले
की बात है। एक बगीचे में एक बूढ़ा आदमी एक कुएँ से पानी खींचता था। बूढ़ा आदमी और उसका लड़का दोनों ही बैल जहाँ आगे लगे होते हैं पानी खींचने को उस डंडे में जुते हुए हैं और दोनों उस कुएं से पानी खींच रहे थे। कनफ्यूशियस ने देखा और सोचा शायद इन लोगों को ये पता नहीं है कि ये काम तो उस बैलों से या घोड़ों से लिया जा सकता है, जो ये खुद कर रहे हैं। उसने जाके उस बूढ़े आदमी से कहा कि मित्र क्या तुम्हें पता नहीं है कि बड़े-बड़े कुओं से लोग अब घोड़े व बैलों से काम लेने लगे हैं तो तुम इसमें खुद जुते हुए हो। उस बूढ़े आदमी ने कहा कि धीरे बोलो कहीं मेरा लड़का ना सुन ले। और तुम थोड़ी देर से आना। कनफ्यूशियस बहुत हैरान हुआ कि उसने ऐसा क्यों कहा। थोड़ी देर बाद वो उस बूढ़े आदमी के पास गया। बूढ़े आदमी ने कहा बोलो मैंने भी सुना है कि ये काम बैलों और घोड़ों से लिया जाने लगा है। लेकिन मैं डरता हूं कि कहीं मेरे लड़के को ये पता न चल जाए वो भी ये काम बैलों और घोड़ों से ले लेगा बात यहीं पर समाप्त नहीं होती है, जब हम काम दूसरों से लेना शुरू कर देते हैं तो काम के लिए हमारी खुद की शक्ति मरनी शुरू हो जाती है। आज मेरे लड़के में वो ही ताकत है, जो घोड़ों में होनी चाहिए। लेकिन कल जब वो घोड़ों से काम लेना शुरू करेगा, उसकी ये ताकत, उसकी शक्ति विलीन हो जाएगी। और फिर बात यही थोड़े ही रूकेगी आज नहीं कल हम दूसरे काम भी दूसरों से लेना शुरू कर देंगे। एक वक्त ऐसा आएगा कि मनुष्य सब काम दूसरों से ले लेगा, मशीनों से ले लेगा और दूसरों से, लेकिन फिर मनुष्य क्या करेगा। उसने कनफ्यूशियस से कहा इसीलिए तुम विदा हो जाओ और तुम्हारा ये अविष्कार अपने मन में ही रखो, गाँव में इसे मत लाना।
कन्फ्यूशियस ने बाद में सोचा कि बूढ़े आदमी ने उसे ये बात समझाई है और
हो ना हो किसी न किसी दिन मनुष्य इस दुर्भाग्य में पड़ेगा वो सब काम दूसरों से ले लेगा। और तब बहुत मुश्किल हो जाएगी। कॉमन ने अपने एक उपन्यास में लिखा है उस वक्त की कल्पना की है कि जब लोग प्रेम भी नौकरों से करवा लिया करेंगे। घबराने वाली बात मालूम पड़ती है कि कॉमन में कहा कि किसी ना किसी दिन सोचेगा कि ये प्रेम करने की झंझट भी मैं क्यूं लूं और नौकरों से क्यूं न करवा लूं। हमको यह आश्चर्यजनक मालूम पड़ता है। हम कल्पना नहीं कर पाते कि प्रेम का काम कभी हम मशीनों पर छोड़ देंगे लेकिन ज्ञान का काम हमने मशीनों पर छोड़ा हुआ है। स्मृति तो मशीन है। और चूंकि हमने उस पर छोड़ दिया है इसलिए खुद की चेतना जाग नहीं पाती।

खुद की चेतना के जागरण के लिए, जरूरी है कि चेतना पर भी समस्याओं का बोझ और पीड़ा और दंश पड़े। समस्याएं चेतना को ही भेदें, ताकि चेतना तिलमिलाए उठे और जागृत हो। जब जीवन चोट करता है तभी कोई चीज जागती है। और जब जीवन चोट ही खड़ा करता है, चैलेंज खड़ा करता है तो ही ऊर्जा खड़ी होती है और उत्तर देती है। स्मृति से काम ना लें। जीवन की गहरी समस्याओं के लिए सत्य के लिए, परमात्मा के लिए, आत्मा के लिए स्मृति को मौन होने के लिए कहें तो विचार का जन्म होगा। जरूरी नहीं है कि विचार आपको उत्तर दे, हो सकता है कि बहुत ऐसे उत्तर हों जो मौन में ही मिलते हैं। जिनके लिए कोई शब्द नहीं होता। जरूरी नहीं है कि विचार उत्तर दें बहुत से उत्तर हैं जो मौन में ही मिलते हैं जिनके लिए कोई शब्द नहीं होता आप पूछें हो सकता है चेतना चुप ही रह जाए लेकिन उस चुप रहने में उस साइलेंस में भी एक समाधान आना शुरू होगा। जो कानों को रूपांतरित कर देगा। और यह नहीं है कि उसके बाद आप दूसरों को उत्तर देने में समर्थ हो जायें लेकिन ये होगा कि आपका जीवन उसके बाद दूसरा जीवन होगा। उत्तर का सवाल कोई प्रश्न और शब्द में बांधने की बात नहीं है। उत्तर या समाधान का अर्थ है, आपके प्राण परिवर्तित हो जायें। आप पूछें चेतना मौन रह जाए, कोई उत्तर न मिलता हो। भीतर आप चुपचाप खड़े रह जाएं। पूछते हो ईश्वर है? और कोई उत्तर न आता हो हाँ या ना में और आएगा भी नहीं। हाँ में जो उत्तर आएगा वो उस स्मृति से आएगा जो आस्तिकों के आधार पर बनी हैं। न में जो उत्तर आएगा वह उस स्मृति से आएगा जो नास्तिकों के आधार पर बनी है लेकिन अगर स्मृति का कोई उपयोग ही न किया जाए और सिर्फ चेतना ही खोज करे तो हो सकता है कोई भी उत्तर ना आए मैं तो समझता हूँ कि कोई भी उत्तर नहीं आता है। लेकिन उस साइलेंस में, उस मौन में उस अनुत्तर की स्थिति में भी प्राणों को एक समाधान मिलना शुरू हो जाता है। वो समाधान शब्द तो नहीं बनता लेकिन कल से दूसरे दिन से आपना जीवन दूसरा होना शुरू हो जाता है। तब अगर कोई आपसे पूछे कि ईश्वर है तो शायद आप न कह सके हाँ या ना। लेकिन आप अपने जीवन को बता सकें कि मेरे जीवन की देखें, शायद उससे पता चल जाए। उस जीवन में ईश्वर होगा। शायद आप कहें कि आंखों में झांकें, आंखों में झांकने से उत्तर मिल जाए। शायद आप कहें जो कि मेरे हृदय की धड़कनों को सुने। और शायद उस धड़कन में उत्तर मिल जाए। वो आपके जीवन में मौन में उपलब्ध हुआ समाधान आपके पूरे जीवन को घेर लेगा। ईश्वर का होना या ना होना सात्विक, बौद्धिक उत्तर की बात नहीं है आपके पूरे टोटल, आपके समग्र जीवन से उठती हुई प्रार्थना है। वह आपके शब्दों की बात नहीं, वह आपके समग्र जीवन से उठी हुई प्रार्थना है। समग्र जीवन समग्र जीवन से उठी हुई प्रार्थना है। समग्र जीवन से उठता हुआ संगीत है।
बुद्ध के पास एक युवक एक बार आया। उसने कुछ प्रश्न पूछे। बुद्ध ने कहा
कि अगर तुझे प्रश्नों के उत्तर ही पाने हैं, तो तू कहीं और जा, हम उत्तर नहीं देते हैं, हम तो समाधान देते हैं। वह युवक हैरान हुआ। उसने पूछा कि समाधान और उत्तर में क्या कोई भेद होता है? बुद्ध ने कहाः बहुत भेद होता है। उत्तर होते हैं बौद्धिक। शब्दों में। समाधान बौद्धिक नहीं होता, आत्मिक होता है, समग्र होता है, टोटल। उत्तर होते हैं शब्दों में, समाधान होता है साधना में। उत्तर मैं दे सकता हूं, समाधान तुम्हारे भीतर से आता है। तो उत्तर तो देने में मैं असमर्थ हूं, लेकिन अगर समाधान पाना हो, तो रुको। उत्तर जल्दी दिए जा सकते हैं, समाधान के लिए तो वर्षों लग जाएंगे। जीवन भी लग सकता है। बहुत जीवन भी लग सकते हैं। इतना धीरज हो तुमको। तो उस युवक ने कहाः उत्तर पाते-पाते मैं भी परेशान हो गया हूं। इधर तीस वर्षों से खोजता हूं, जिसके पास भी जाता हूं वह उत्तर देता है, लेकिन उत्तर तो मिल जाते हैं, प्रश्न वहीं के वहीं खड़ा रह जाता है। प्रश्न तो कहीं हटता नहीं। तो मैं रुकने को राजी हूं। धीरज से प्रतीक्षा करूंगा। बुद्ध ने कहाः तुम रुक जाओ। वर्ष भर बाद इसी दिन तुम फिर पूछना।
वह रुक गया। वह वर्ष उसे मौन रहने की साधना कराई गई। उसे चुप होना सिखाया गया।
बाहर से तो हम चुप होना जानते हैं, भीतर से चुप होना बहुत कठिन है।
भीतर चुप हो जाना बहुत कठिन है जो भीतर चुप हो जाता है वह सब जान लेता है।

भीतर चुप हो जाने से बड़ा कोई सूत्र नहीं है। सत्य को या परमात्मा को जानने का। लेकिन हम तो देखते हैं जो परमात्मा को जानने जाते हैं वे भीतर गीता पढ़ते हैं, कुरान पढ़ते हैं, बाइबिल पढ़ते हैं, वे चुप कैसे होंगे? वे तो रोज सुबह उठके पाठ करते हैं। वे तो रोज सुबह शब्द याद करते हैं और जिस दिन गीता उन्हें कंठस्थ हो जाती है उस दिन ज्ञानी होने का मजा भी आएगा। वो तो भीतर लड़ते हैं लेकिन वस्तुतः जो भीतर खाली करता है वही जान पाता है, जो भीतर भरता है वो नहीं। बुद्ध ने उसे वर्ष भर खाली करने का विज्ञान सिखाया, कि भीतर तुम निपट खाली हो जाओ, भीतर जो है सबको गिराने दो। भीतर का भवन जिस दिन खाली हो जाएगा उस दिन समाधान आएगा।
वर्ष बीता, एक वर्ष बीत जाने के बाद बुद्ध ने उस व्यक्ति को कहा कि अब तुम पूछो लेकिन वो हंसने लगा। उसने कहा कि जैसे-जैसे मैं भीतर खाली होता गया मेरे प्रश्न भी विलीन हो गए क्योंकि मेरे प्रश्न भी भरे हुए थे, वे भी विदा हो गए। अब मेरे पास कोई भी प्रश्न नहीं है। उन्होंने कहाः कोई उत्तर आया? उसने कहा नहीं कोई उत्तर नहीं आया, लेकिन अब मुझे उत्तर चाहिए भी नहीं। जिस समाधान की तलाश थी वो उपलब्ध हुआ। मेरा पूरा जीवन परिवर्तित हुआ है। जीवन के परिवर्तन में उपलब्धि है, उत्तर के पाने में नहीं। विचार उत्तर नहीं लाएगा लेकिन सारे जीवन का परिवर्तन ले आएगा। पहला सूत्र तो है स्मृति को विदा करने का, स्मृति को मोल्ड करने का, स्मृति को कहने का कि तुम ठहरो और दूसरा सूत्र, दूसरा सूत्र है धैर्य से प्रश्न के साथ जीने का। जो नहीं कहेगा वो स्मृति पर निर्भर हो जाएगा। जल्द ही उत्तर चाहिए, स्मृति बहुत जल्दी उत्तर दे देती है लेकिन धैर्य से प्रतीक्षा करने की बात है। उत्तर नहीं आए तो प्रतीक्षा करें, प्रश्न पूछें और चुप हो जायें और किसी दूसरे के उत्तर को स्वीकार न करें। प्रश्न पूछें और चुप हो जाएं देखें इस प्रयोग को करके देखें। इस प्रयोग को करके देखें। पूछें कि प्रेम क्या है? और चुप हो जाएं और कोई भी उत्तर जो किताबों से आता हो, शास्त्रों से आता हो उसको विदा कर दें। उसे मत बीच में आने दें, पूछें कि प्रेम क्या है और चुप हो जाएं और प्रतीक्षा करें। उत्तर नहीं आएगा शब्दों में कि प्रेम क्या है? लेकिन धीरे-धीरे आप पायेंगे कि वो प्रश्न की प्रेम क्या है? आपके प्राणों में गिरता चला गया। और धीरे-धीरे आप पाएंगे कि जीवन में आपके प्रेम का आगमन शुरू हुआ है। मत उत्तर दें जीवन प्रेम से भरना शुरू हो जाएगा। एक दिन पायेंगे कि प्रश्न विलीन हो गया और जीवन प्रेम से भर गया है। पूछें कि मैं कौन हूँ, और उत्तर न दें कि, मैं आत्मा हूं कि मैं फलां हूँ। सब तरफ उत्तर सिखाए जा रहे हैं कि मैं शुद्ध रूप आत्मा हूं, मैं यह हूं, मैं वह हूं, मैं अनन्त ज्ञान हूं, ये सब मत उत्तर दें। पूछें कि मैं कौन हूं और चुप हो जाएं। सोते समय पूछें कि मैं कौन हूं, जागते समय पूछें कि मैं कौन हूं और सारे उत्तर जो आपने सुन रखे हैं कोई भी उनका उपयोग न करें। मौन में मैं कौन हूं, इस प्रश्न को जीवन में उतरते जाने दें। सोते-जागते कार्य करते जब भी स्मरण हो जाए पूछें कि मैं कौन हूं और पीछे चुप हो जाएं कोई उत्तर न दें, अपनी तरफ से कोई उत्तर न दें। धीरे-धीरे एक दिन ये प्रश्न गिरेगा और भीतर से एक समाधान उपलब्ध होगा। नहीं कोई शब्द बनेंगे लेकिन आप जानेंगे कि कौन है ये।
उत्तर देने वाला भूल में पड़ जाता है, प्रश्न पूछने वाला और उत्तर को शांत रहने देने वाला, प्रश्न पूछने वाला और बिना उत्तर के धैर्य से प्रतीक्षा करने वाला एक दिन समाधान को उपलब्ध होता है।
विचार से मेरा ये अर्थ है, इतने गहरे में पूछ कर धैर्य से प्रतीक्षा करे, धैर्य अदभुत बात है। एक आदमी बीज को बो देता है फिर धैर्य से प्रतीक्षा करता है। अंकुर के निकलने की। फिर अंकुर निकलेगा, फिर पत्ते होंगे। फिर फूल आएंगे, फिर फल आएंगे। बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ती है। लेकिन अगर प्रतीक्षा न करनी हो फूलों के लिए तो तो फिर बाजार में कागज के फूल मिलते हैं, उनको खरीद कर लाया जा सकता है। वे जल्दी मिल जाते हैं। उन फूलों के मिलने में देर नहीं होती। ऐसे ही जिसे सच में जीवन की खोज करनी है उसे प्रश्न का बीज डालके चुप रह जाना चाहिए। उसे जल्दी से उत्तर लाने की फिक्र नहीं करनी चाहिए। उत्तर लाएगा तो उधार, बासा, वो किसी का होगा। बाजार का

होगा, कागज का होगा। उस उत्तर में कोई प्राण नहीं होंगे, वो जीवंत नहीं होगा। प्रश्न का बीज डाल दें और उत्तर फिर की फिक्र न करें। फिर शांति से प्रतीक्षा करें, प्रश्न के बीज को बोयें और उत्तर के लिए समाधान के लिए प्रतीक्षा करें। उसी प्रश्न के बीज में से अंकुर निकलेगा, उसी बीज में से जिसमें कोई जीवन नहीं मालूम होता। जो कुछ-कुछ जड़ मालूम होता है उसी में से अंकुर निकलता है, जीवन। उसी की खोल टूटती है, सड़ती है और अंकुर बन जाता है। और फिर उसी अंकुर में से प्राण विकसित होता है और फूलों तक पहुंचता है। जिस प्रश्न में आपको कुछ नहीं दिखायी पड़ रहा उसी प्रश्न में उत्तर छिपा हुआ है। लेकिन उस प्रश्न को भीतर हृदय की भूमि में गहरा पड़े रहने दें जल्दी ना करें। वो प्रश्न भीतर पड़ा रहे, हृदय में गले, गल जाए, टूट जाए, फिर उसमें से अंकुर आएगा और उसी प्रश्न में से उत्तर उपलब्ध होगा लेकिन धैर्य से प्रतीक्षा करनी होगी और जो जितने धैर्य से प्रतीक्षा करेगा उतनी ही शीघ्रता से उस बीज से अंकुर आ सकता है। और उसमें से समाधान के फल लगेंगे, फूल लगेंगे और जीवन सुगंध से भर जाएगा।
जीवन के संबंध में जो भी गहरे प्रश्न हैं उन्हें अपने भीतर बोना जरूरी है, लेकिन हम प्रश्न को नहीं बोते हम तो प्रश्न से छुटकारा पाना चाहते हैं। और छुटकारा पाने का एक ही उपाय है कि किसी से भी उत्तर पूछ लेते हैं और तृप्त होने लगते हैं। प्रश्न सार्थक है उत्तर नहीं। जिसे विचार करना है उसे प्रश्न सार्थक है उत्तर नहीं। जिसे विश्वास करना है उसे प्रश्न सार्थक नहीं उत्तर सार्थक है। विश्वास करना हो उत्तर इकट्ठे कर लें। विचार करना हो, उत्तर को अलग कर लें। प्रश्न, जिज्ञासा, समस्या इकट्ठी कर ले। वे दोनों वेद पढ़ लें। विश्वास करने वाला उत्तर इकट्ठे करता है। विचार करने वाला प्रश्न को गहरा करता है। अपने प्राणों को सारा प्रश्न पर जोड़ता है। विचार करने वाला प्रश्न की खेती करता है। विश्वास करने वाला प्रश्नों की नहीं उत्तरों की तिजोरी भरता है। उत्तर इकट्ठे करने वाला पंडित हो जाता है। प्रश्न को बोने वाला प्रज्ञा को उपलब्ध होता है। जो प्रश्न को बोता है, श्रम करता है, प्रतीक्षा करता है, एक दिन ज्ञान के फूल उसे उपलब्ध होते हैं। जो इकट्ठा करता है विश्वासों को, उत्तरों को, समाधानों को, सिद्धांतों को उसे जल्दी फल मिल जाता है और वो पंडित हो जाता है। कोई भी प्रश्न पूछें वह उत्तर देने लगता है लेकिन उसके जीवन में कोई ज्ञान की किरण नहीं उठती और न उसके जीवन में कोई बुनियादी अन्तर आते हैं। सत्य के संबंध में उससे पूछिए तो वो उत्तर दे सकता है, उसके जीवन में कोई सत्य नहीं होता। प्रेम के संबंध में पूछिए तो वो शास्त्र लिख सकता है लेकिन उसके जीवन में प्रेम नाममात्र को नहीं होता और हो सकता है कि जो इन प्रश्नों को अपने भीतर बोए उसे मुश्किल हो जाए प्रेम के संबंध में कुछ कहना या कुछ लिखना। उसे मुश्किल हो जाए सत्य के संबंध में कुछ कहना या बोलना। लेकिन उसके जीवन में सत्य की और प्रेम की सुगंध व्याप्त होनी शुरू हो जाती है।
एक बाउल फकीर था बंगाल में, एक वैष्णो पंडित एक बार उससे मिलने गया।
तो बाउल तो फकीर निरंतर प्रेम की बातें करते हैं। गाते हैं गीत तो प्रेम के, प्रार्थना करते हैं तो प्रेम की। जीते हैं तो प्रेम में, चलते हैं तो प्रेम में। वैष्णो पंडित मिलने गया उस बाउल फकीर से उसने पूछा परमात्मा है उसने कहा मुझे पता नहीं। लेकिन प्रेम है। और जो प्रेम को जान लेता है वो एक दिन परमात्मा को भी जान लेता है। उस वैष्णो पंडित ने पूछा कैसा प्रेम, कौन सा प्रेम, तुम्हें पता है प्रेम के कितने प्रकार होते हैं? बाउल सुन कर हैरान हुआ प्रेम को तो मैंने जाना लेकिन प्रकार को मैंने नहीं जाना। प्रेम में भी कहीं प्रकार होते हैं! वो वैष्णो पंडित हंसने लगा और पंडित हमेशा ही उन पर हंसा है जो जानते हैं। वो हंसने लगा उसने कहा तुम्हें ये भी पता नहीं कि प्रेम के प्रकार होते हैं। प्रेम होता है पांच प्रकार का, तो कौन से प्रकार से प्रेम से परमात्मा मिलता है। वो फकीर तो चुप रह गया। उस पंडित ने अपनी किताब, अपने झोले कहा मेरे पास ये वर्णन है पांच प्रकार के प्रेमों का। वो पढ़के उसने सुनाया एक-एक प्रेम की बारीक-बारीक व्याख्या थी। सुनाने के बाद उसने उस फकीर से पूछा कैसा लगा, कैसा प्रतीत हुआ ये

विश्लेषण कैसा है प्रेम का? ये प्रेम के प्रकार ठीक हैं या गलत? तुम्हें कैसा लगा इनको सुन कर? उस फकीर ने आप हैरान होंगे क्या कहा। वो नाचने लगा और उसने एक गीत गाया। उस गीत का अर्थ बहुत अदभुत था। उसने अपने गीत में गाया कि तुम जब प्रेम के प्रकारों का वर्णन करने लगे तो मुझे कैसा लगा, पूछते हो मुझे कैसा लगा। मुझे ऐसा लगा जैसे कोई सुनार सोने पर सोने को कसने का जो पत्थर होता है उसको लेकर फूलों की बगिया में आ गया हो। मुझे ऐसा लगा कि वो उस पत्थर पर फूलों को कस-कस कर देखने लगा कि कौन फूल सच्चा, कौन फूल झूठा। वो नाचा और उसने गीत गाया कि मुझे ऐसा लगा। कि सुनार जब सोने के कसने के पत्थर को लेकर फूलों को कसता है और देखता है कौन फूल सच्चा, कौन फूल झूठा। उसने कहा कि जब मैंने प्रेम को जाना तो सब प्रकार मिट गए। जब मैंने प्रेम को जाना तो सब भेद गिर गए। जब मैंने प्रेम को जाना तो न तो मैं रहा और न वो रहा जिसे मैंने प्रेम किया। जब मैंने प्रेम को जाना तो सिर्फ प्रेम ही रह गया, न वहां कोई प्रकार थे, न वहां कोई भेद था, न वहां कोई द्वेत था, न वहां प्रेमी था और न वो था जिससे प्रेम किया गया। फिर तो बस प्रेम ही रह गया। जब मैंने प्रेम को जाना तो सिर्फ प्रेम ही रह गया। लेकिन जिन्होंने प्रेम को नहीं जाना और शास्त्र पढ़े हैं उन्हें प्रेम के प्रकारों का पता है कि वो कितने प्रकार का प्रेम होता है।
दो तरह के जगत हैं जीवन की खोज में दो तरह की दिशाएं हैं। एक पांडित्य
की दिशा है, एक ज्ञान की। जो पांडित्य की दिशा में जाता है वो सदा के लिए खो जाता है। उसके पास शब्दों के सिवाय और कुछ भी नहीं होता। और जो ज्ञान की दिशा में जाता है धीरे-धीरे उसके शब्द खोते चले जाते हैं, उसके पास निःशब्द अनुभूति के सिवा कुछ भी नहीं होता। जो विचारों को इकट्ठा करेगा वो पंडित हो जाएगा और जो विचार को जन्माएगा, वो विचार की दृष्टि को पैदा करेगा। सोचने की सामर्थ्य पैदा करेगा, प्रश्न पूछेगा और फिर चेतना को चैलेंज देगा और चेतना से उत्तर आने की प्रतीक्षा करेगा। उसके जीवन में ज्ञान का जन्म होता है, विचारों से नहीं लेकिन विचार से पहुंचा जा सकता है। विचारों के संग्रह से नहीं लेकिन विचार के जन्म से। और हम सब इस भूल में पड़ जाते हैं कि हम विचारों को इकट्ठा करते हैं। और सोचते हैं कि विचार हमें मिल गया। विचार ऐसे नहीं मिलेगा! विवेक ऐसे नहीं मिलेगा, प्रज्ञा ऐसे नहीं मिलेगी। प्रज्ञा की खोज के लिए।
विचार की खोज के लिए दो सूत्र मैंने आपसे कहे। पहला, स्मृति को मौन हो जाने दें। स्मृति से बचें, स्मृति खतरनाक है। स्मृति बहुत बड़ी प्रवंचक है। जो स्मृति की भूल में पड़ता है, वह अटकता है। दूसरी बात, प्रश्न पूछें, उत्तर की जल्दी न करें। प्रश्न को बोयें। प्रश्न के बीज को प्राणों में डालें। प्रश्न को वहां घूमने दें, गूंजने दें। प्रश्न को वहां तीव्र से तीव्र होने दें। प्रश्न को वहाँ मन में आंदोलित होने दें। गतिमान होने दें। और उत्तर की जल्दी न करें। कोई भी उत्तर आए स्वीकार न करें। कोई भी उत्तर आए अस्वीकार करते जायें। एक क्षण रहे कि प्रश्न ही रह जाए कोई उत्तर ना हो। प्राणों में तीर की भांति प्रश्न प्रविष्ट होता चला जाए और प्रतीक्षा और धैर्य, धीरज से देखें। एक दिन उसी प्रश्न से उत्तर आएगा। जिस आत्मा ने प्रश्न पूछा है, वह आत्मा उत्तर देने में समर्थ है। लेकिन हम दूसरों के उत्तर स्वीकार कर लेंगे तो फिर उस आत्मा के उत्तर देने का कोई कारण नहीं रह जाता। जिस आत्मा ने जिज्ञासा दी है, जिस आत्मा ने समस्या खड़ी की है। वो समाधान देने में भी समर्थ है। स्मरण रखें, समस्या है तो समाधान भी है। प्रश्न हैं तो, उत्तर भी है। जिज्ञासा है, तो हल भी है, जिस प्राण के केंद्र से जिज्ञासा उठ रही है, उसी प्राण के केंद्र को समाधान भी देने में आप जल्दी न करें। कहीं से उधार समाधान न ले आयें। वह उधार समाधान असली समाधान के आने में बाधा बन जाता है।
ये दो बातें मैंने विचार के जन्म के लिए आपसे कही हैं। अविचार से बचें, विश्वास से बचें, स्मृति से बचें और विचार को जगाने की सतत चेष्टा करें। तो एक दिन निश्चित रूप से विचार का जन्म होता है। सारा जीवन परिवर्तित हो जाता है। उस अनुभूति के क्षण में आप पायेंगे कि वे सारी बातें जो विश्वास के नाम से, प्रचलित हैं। सिद्धांत के, सत्य के,

शास्त्रों के नाम से वे सब बहुत गहरे अर्थों में आपके सामने स्पष्ट हो गयी हैं। प्रत्यक्ष हो गयी हैं। विचार से जो चलता है, वो एक दिन पाता है वास्तविक श्रद्धा को, वास्तविक विश्वास को, उस अनुभूति को जिस पर कोई संदेह का कारण नहीं रह जाता। क्योंकि वह स्वयं पायी गयी है, वो स्वयं जानी गई है, हम केवल उसी सत्य के प्रति असंदिग्ध हो सकते हैं जो स्वयं पाया गया हो, जो सत्य दूसरे ने पाया हो, वो दूसरा चाहे कोई भी हो, कितना ही बड़ा व्यक्ति, भगवान स्वयं लेकिन दूसरे के द्वारा पाया गया सत्य आपके लिए, मेरे लिए असंदिग्ध नहीं हो सकता है। इसलिए ये सारे तथाकथित विश्वास के पीछे अविश्वास छिपा रहता है। ये सब बिलिव्स के पीछे अविश्वास छिपा रहता है। ये सब मान्यताओं के पीछे शक और संदेह मौजूद होता है। उसे हम छिपाए रखते हैं बात दूसरी है, वो मौजूद है। आप मानते हैं ईश्वर है लेकिन थोड़ा खोजना वह आपके भीतर है। आपको खयाल भी मिल जाएगा जो शक कर रहा होगा कि पता नहीं है या नहीं।
आप मानते हैं, आत्मा है। लेकिन भीतर आपके वह बिलिव्स छिपा होगा, जो कहेगा कि पता नहीं है भी या नहीं। आप कितनी भी दृढ़ता से मानते हों, आत्मा ईश्वर को जितनी ज्यादा दृढ़ता होगी भीतर उतना ही शक होगा। यूं तो दृढ़ता किसके विरोध में खड़ी कर रहे हैं आप। उसी शक के विरोध में, वो भीतर जो संदेह है, वो उसी के विरोध में दृढ़ता खड़ी कर रहे हैं। बहुत तीव्रता से विश्वास कर रहे हैं ताकि वो भीतर जो संदेह है उसका स्मरण न रह जाए लेकिन वो मौजूद है, वो जा नहीं सकता। वह छिपा रहेगा, वह असली है।
यह दृढ़ता और यह सब श्रद्धा है। यह सब विश्वास थोपा हुआ है। संदेह ही सत्य है इसलिए कल मैंने आपसे कहा कि संदेह को ही सामने आने दें। झूठा विश्वास मत थोंपे। अगर वस्तुतः किसी दिन विश्वास की और श्रद्धा की स्थिति को उपलब्ध होना है तो उस वास्तविक संदेह को प्रकट होने दें, पूछने दें, प्रश्न को उठने दें। समस्या को आने दें। और जब समस्या खड़ी हो उत्तर न दें। एक दिन उत्तर आएगा।
प्रतीक्षा से एक दिन समाधान आएगा। और वह आपके सारे प्राणों को, सारे जीवन को परिवर्तित कर देगा। जो समाधान पूरे जीवन को बदल दे, वही सत्य है। और ऐसा समाधान विचार के अतिरिक्त न कभी आया है और न आ सकता है।
ये मैंने थोड़ी सी बातें विचार के लिए आपसे कही हैं। कल निर्विचार के लिए आपसे बात करूंगा। इन तीन सीढ़ियों में अविचार विचार और निर्विचार। इन तीन सीढ़ियों में जीवन सत्य को कैसे पाया जा सकता है? इसकी मैं आपसे चर्चा कर रहा हूं।

मेरी इन बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, इसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद।

चित चकमक लागै नहीं
पांचवां प्रवचन

विचारः एक आत्मानुभूति

सबसे पहले विचार के संबंध में सुबह मैंने बोला है। पूछा हैः विचार किसी भी व्यक्ति या शास्त्र का हो, जब वह आत्मसात हो जाता है तो निजी का बन जाता है। यह बात बहुत बार कही जाती है कि जब कोई विचार आत्मसात हो जाए तो वह निजी का बन जाता है। लेकिन विचार के आत्मसात होने का क्या अर्थ है? और क्या कोई विचार आत्मसात हो सकता है?

मेरे देखे कोई विचार आत्मसात नहीं हो सकता है। हां, यह भ्रम हो सकता
है कि विचार आत्मसात हुआ। यदि किसी विचार पर निरंतर आग्रहपूर्वक श्रद्धा की जाए, किसी विचार को निरंतर स्मरण किया जाए, किसी विचार को निरंतर दोहराया जाए, तो हम एक तरह का आत्मभ्रम पैदा कर सकते हैं कि वह विचार हमारे भीतर प्रविष्ट हो गया। जैसे उदाहरण को, एक फकीर कुछ दिन पहले मुझसे मिलने आए, उन्होंने मुझसे कहाः मुझे सब जगह परमात्मा के दर्शन होते हैं--वृक्ष में, पशु में, पक्षी में, जहां भी देखता हूं वहां मुझे परमात्मा ही दिखाई पड़ता है। उनके साथ उनके भक्त भी आए थे, उन्होंने भी मुझसे यही प्रशंसा कर रखी थी कि जिनको वे मुझसे मिलाने ला रहे हैं उन्हें सब जगह परमात्मा का दर्शन होता है। पत्ते-पत्ते में उन्हें उसी की नेचर दिखाई पड़ती है, वही दिखाई पड़ता है, उसी की सूरत दिखाई पड़ती है।
फिर वे मुझसे मिलने आए। तो मैंने उनसे पूछा कि यह जो परमात्मा का आपको दर्शन हो रहा है, आपने विचार को बार-बार अनुभव करके उपलब्ध किया है या कि निर्विचार होकर उपलब्ध किया है? आपने ऐसा बार-बार सोचा है क्या कि सब तरफ परमात्मा है? क्या निरंतर सतत इस बात की स्मृति रखी है कि फूल में, पत्ते में, पौधे में सब जगह परमात्मा है? उन्होंने कहा कि मुझे बीस वर्षों तक इसी की साधना करनी पड़ी है। इसी विचार का, इसी पवित्र विचार को मैं चौबीस घंटे स्मरण करता रहा हूं, अब तो मुझे सब तरफ परमात्मा दिखाई पड़ने लगा है। मैंने उनसे कहाः कृपा करें, एक सप्ताह के लिए यह विचार करना छोड़ दें। और एक सप्ताह बाद मुझे कहें कि क्या हुआ। उन्होंने कहाः तब तो बहुत मुश्किल होगा। अगर मैं विचार करना छोड़ दूंगा, तो फिर परमात्मा दिखाई पड़ना बंद हो जाएगा। तो बीस वर्ष तक विचार किया कि सब जगह परमात्मा है, तो मन में एक भ्रम पैदा हो गया कि सब जगह परमात्मा है। सात दिन के लिए छोड़ देंगे तो परमात्मा फिर विलीन हो जाएगा।
तो यह तो मन की कल्पित स्थिति हुई, यह तो प्रोजेक्शन हुआ, यह तो मन के
ही किसी विचार को निरंतर खयाल करने से दिखाई पड़ने का भ्रम हुआ, यह तो सपना हुआ। और विचार इसी भांति आत्मसात होता है। यह कोई विचार का भीतर, जीवन में अनुभव होना नहीं है, बल्कि मनुष्य के भीतर वह जो भी कल्पना करे उसे देखने की क्षमता है। एक आदमी निरंतर विचार करता रहे।
आज ही एक मित्र ने मुझसे आकर कहा कि हम निरंतर यही विचार करते हैं--मैं शरीर नहीं हूं, मैं मन नहीं हूं, मैं तो आत्मा हूं। तो मैं इस विचार को करूं या न करूं? मैंने उनसे कहाः इसे भूल कर भी मत करना। क्योंकि बार-बार इस विचार को करने से ऐसा लगने लगेगा कि न मैं शरीर हूं, न मैं मन हूं, मैं तो आत्मा हूं। लेकिन यह लगना झूठा होगा। यह केवल निरंतर विचार के दोहराने से पैदा हुआ भ्रम है, यह कोई अनुभूति नहीं है। यह आत्म-सम्मोहन है, यह ऑटो- हिप्नोसिस है। किसी भी विचार को बार-बार दोहराएं कि अब ऐसा लगने में कोई कठिनाई नहीं है। यह आत्म-सम्मोहन इतने दूर तक जा सकता है जिसका कोई हिसाब नहीं। कोई भी बात को पुनरुक्त करें।
मेरे एक शिक्षक थे, जब मैं पढ़ता, उनसे मैंने यह कहा, वे निरंतर कृष्ण
के भक्त थे और निरंतर यही खयाल करते थे कि सब जगह कृष्ण दिखाई पड़ें। मैंने उनसे कहा कि जब तक नहीं दिखाई पड़ते तब तक सौभाग्य है, जिस दिन सब तरफ दिखाई पड़ने लगेगा उस दिन आप करीब-करीब पागल की स्थिति में होंगे। क्योंकि वह विचार का प्रक्षेपण होगा, वह कोई अनुभव नहीं होगा। उन्होंने कहाः यह हो ही

कैसे सकता है। केवल कल्पना करने से थोड़े कुछ दिखाई पड़ सकता है, जब तक कि वह हो ही न हो। केवल कल्पना करने से कैसे सब में भगवान या कृष्ण के दर्शन होंगे? कृष्ण होंगे तो ही तो दर्शन होंगे।
मैंने बात सुन ली और उस दिन उनसे कुछ भी नहीं कहा। जिस विश्वविद्यालय में वे पढ़ाने आते थे, उससे और उनके मकान का फासला कोई एक मील का था। दूसरे दिन मैं गया, उनके पड़ोस में जो व्यक्ति रहते थे उनकी पत्नी को मैं कह आया कि कल सुबह उठ कर ही, मेरे जो अध्यापक थे उनका नाम उनको बता आया, उठ कर जैसे ही उनके तुम्हें दर्शन हों, जैसे ही वे दिखाई पड़ें, उनसे कहना, आज आप बहुत बीमार मालूम पड़ते हैं, क्या तबीयत खराब है? और वे क्या कहते हैं ठीक उनके शब्द लिख रखना, एक भी शब्द में फर्क मत करना। और थोड़े आगे एक चपरासी रहता था, उसको भी मैं कह आया कि जब वे यहां से निकले तो तुम कहना, आज आप बहुत पीले-पीले मालूम पड़ते हैं, क्या बात है? और वे जो कहें तुम लिख कर रख लेना, उसमें जरा भी फर्क मत करना। जो वे कहें वही लिख लेना। और ऐसा मैं दस-पंद्रह लोगों को उनके पूरे रास्ते पर समझा आया। उन सबने कहाः मामला क्या है? मैंने कहाः मैं कुछ प्रयोग कर रहा हूं, आप कृपा करके सहायता करें।
दूसरे दिन वे सुबह उठे और उनकी पड़ोसन ने उनसे कहा कि क्या बात है आज तो
आप बहुत बीमार से मालूम पड़ते हो। उन्होंने कहाः बीमार? मैं तो बिल्कुल स्वस्थ हूं। कैसी बीमारी, मैं तो बिल्कुल बीमार नहीं हूं, मैं तो बिल्कुल ठीक हूं। जब वहां से निकले और उनके चपरासी ने उनसे पूछा कि आज तो आप बहुत बीमार से मालूम पड़ते हैं। उन्होंने कहाः कुछ ऐसा लगता है रात से कुछ तबीयत ढीली है। वे और आगे आए, उन्हें दो-चार विद्यार्थी मिले, उन्होंने भी कहा कि आज हम पीछे से देखते हैं आपके पैर कुछ कंपते से मालूम पड़ते हैं, कुछ तबीयत खराब है। उन्होंने कहाः हां, रात से ही कुछ मेरी तबीयत खराब है, मन तो मेरा नहीं था कि आज विश्वविद्यालय आऊं, लेकिन सोचा कि... वे और आगे आए और विश्वविद्यालय का पुस्तकालय था और वहां उन्हें दो-चार लड़कियां मिलीं और उन्होंने पूछा कि आज आप बहुत बीमार मालूम पड़ते हैं, बुखार में हैं। उन्होंने कहा कि आज दो-तीन दिन से तबीयत ढीली थी, रात से तो बुखार चढ़ा हुआ है।
वे जब कक्षा के बाहर आए, तो मैं वहां खड़ा था, मैंने उनसे कहा कि आप तो
आज बहुत अस्वस्थ मालूम पड़ते हैं। वे बोले, मैं आज पढ़ाऊंगा नहीं, सिर्फ विभाग के अध्यक्ष को कहने आया हूं कि तबीयत मेरी खराब है, मैं जा रहा हूं। फिर वे वापस पैदल नहीं गए, फिर वे वापस तांगा बुला कर गए।
सांझ को हम सब उनके पास पहुंचे, वे तो बिस्तर में पड़े थे और गहरे बुखार में थे। मैंने उनकी पत्नी को कहा कि इनका बुखार तो नापो, उन्हें एक सौ दो बुखार था। मैंने उनसे कहाः आप उठ आइए यह बुखार झूठा है। वे बोले, मतलब? मैंने कहाः ये सारे लोग खड़े हैं जिन्होंने आपसे सुबह निवेदन किया था कि क्या आपकी तबीयत खराब है, उन सबको मैं ले गया था। वे देख कर चौंक गए और बैठ गए, बोले, मतलब क्या हैं? मैं कुछ समझा नहीं।
मैंने कहाः यह मैं कृष्ण का दर्शन करा रहा हूं आपको। यह बुखार झूठा है
यह जो आप पर आया हुआ है। आप उठ आइए आपकी तबीयत खराब नहीं है। यह आपकी पहली चिट्ठी है जो आपने सुबह उठ कर कहा था कि मैं बिल्कुल ठीक हूं। यह आपकी दूसरी चिट्ठी है जो आपने कहा कि हां, रात से कुछ तबीयत ढीली है। यह आपकी तीसरी चिट्ठी है, आपने कहा, हां, दो-तीन दिन से कुछ तबीयत ढीली थी, रात बुखार हो गया। ये आपके सब उत्तर हैं जो आपने सुबह डेढ़ घंटे, दो घंटे के भीतर दिए हैं। और ये आप लेटे हैं। और यह थर्मामीटर है और यह एक सौ दो डिग्री बुखार है और यह बिल्कुल झूठा है। यह केवल मानसिक कल्पना है और प्रक्षेप है।
बुखार भी पैदा हो सकता है, आदमी मर भी सकता है। और आदमी जो देखना चाहे
वह देख भी सकता है। यह किसी विचार का आत्मसात होना नहीं है। यह किसी विचार का मन के ऊपर घने अंधकार की भांति छा जाना है। इससे जो प्रतीतियां होंगी वे असत्य होंगी।
विचार को आत्मसात नहीं करना है बल्कि सब विचारों को विदा दे देनी है ताकि आपके भीतर अपने विचार का अविर्भाव हो सके। आत्मसात नहीं, अविर्भाव।

किसी दूसरे के विचार को या किसी धारणा को, या किसी कल्पना को, या किसी विचार को आग्रहपूर्वक अपने ऊपर ओढ़ लेना इससे बड़ा धोखा है, इससे बड़ी गलती, इससे बड़ी भूल और दूसरी नहीं है।
भगवान के दर्शन हो सकते हैं, बड़े आसानी से मुरली मनोहर दिखाई पड़ सकते हैं, या सूली पर लटके हुए क्राइस्ट दिखाई पड़ सकते हैं, या धनुर्धारी राम दिखाई पड़ सकते हैं, या जो आपके मन में आए या जो आपकी कल्पना आपको सुझाए वैसे भगवान के दर्शन हो सकते हैं। लेकिन ये दर्शन सत्य के दर्शन नहीं हैं। यह मनुष्य की अपनी ही कल्पना का विस्तार है। और मनुष्य के मन की बड़ी शक्ति है। मनुष्य के मन की बड़ी शक्ति है, वह कल्पित से कल्पित चीज को भी प्रत्यक्ष कर सकता है। स्त्रियों में पुरुषों से यह शक्ति ज्यादा है। इसलिए स्त्रियों को और जल्दी भगवान के दर्शन हो सकते हैं। साधारण मनुष्यों से कवियों में यह शक्ति थोड़ी ज्यादा है। इसलिए कवियों को और जल्दी भगवान के दर्शन हो सकते हैं। भगवान के भक्तों ने जो गीत गाए हैं और जो कविता की है वह आकस्मिक नहीं है, वे भटके हुए कवि हैं जो भक्त हो गए हैं। वे कवि हैं मूलतः कल्पना उनकी प्रखर और तीव्र है, भटक गए हैं। भगवान की तरफ कविता लग गई है, कल्पना भगवान की तरफ लग गई है तो वे भगवान के दर्शन कर लेते हैं। भगवान से बातें कर सकते हैं। भगवान का हाथ पकड़ कर चल सकते हैं, इसमें कोई कठिनाइयां नहीं है। लेकिन यह सब रुग्ण मन की स्थिति है। यह कोई स्वस्थ मन की स्थिति नहीं। और इस रुग्ण मन की स्थिति को लाने के बहुत उपाय हैं। और अगर इस रुग्ण मन की स्थिति को लाने हों तो कुछ सहयोगी मार्ग हैं।
हजारों साधु और संन्यासी गांजा और अफीम पीते रहे हैं ताकि ये रुग्ण-चित्त की स्थिति पैदा हो जाए, भगवान के दर्शन हो जाएं। सारी दुनिया में अनेक-अनेक प्रकार के नशे संन्यासियों ने किए हैं, भक्तों ने किए हैं। इस इरादे में कि उस चित्त की धूमिल और नशे की स्थिति में साक्षात जल्दी हो जाता है। लेकिन इससे आप चौंकना मत। अगर लंबा उपवास किया जाए तो भी मन शिथिल और रुग्ण हो जाता है। और लंबे उपवास का भी वही रासायनिक परिवर्तन होता है चित्त पर शिथिलता का और कमजोरी का कि उस क्षण कल्पना प्रखर हो जाती है और आसान हो जाती है।
अगर कभी गहरे बुखार में आप पड़े हों और कुछ दिन भोजन न किया हो, तो आपको पता होगा मन कैसी-कैसी कल्पनाएं करने लगता है--आकाश में उड़ने लगता है मय पलंग के, मय खाट के आकाश छूने लगता है, न मालूम क्या-क्या दिखाई पड़ने लगता है, न मालूम कौन-कौन से भूत-प्रेत आस-पास खड़े हो जाते हैं।
रुग्ण-चित्त अस्वस्थ, कमजोर चित्त कल्पना करने में तीव्र और प्रखर हो जाता है। पैथालॉजिकल माइंड, जितना ज्यादा बीमार चित्त हो। तो चित्त को बीमार करने के बहुत उपाय हैं। उसमें एक उपाय यह है कि बहुत लंबे उपवास किए जाएं तो चित्त की क्षमता क्षीण होती है, शरीर की क्षमता क्षीण होती है। और भोजन न मिलने से शरीर के कुछ तत्व समाप्त हो जाते हैं, जिनकी बहुत जरूरत है। और शरीर में केमिकल चेंज एक रासायनिक परिवर्तन होता है। वह परिवर्तन वैसा ही है जैसा शराब पीने से भी रासायनिक परिवर्तन होता है। ड्रग लेने से भी, मेस्कलीन, एल एस डी लेने से भी जो रासायनिक परिवर्तन होता है। आज नहीं कल जिस दिन हम मनुष्य की आर्गेनिक कैमिस्ट्री ने उसके शरीर के पूरे रासायन को समझने में समर्थ हो जाएंगे, तो यह कोई आश्चर्य की बात न होगी कि यह सिद्ध हो जाए कि उपवास से और नशे से शरीर में बुनियादी रूप से एक से रासायनिक परिवर्तन हो जाते हैं। और उन रासायनिक परिवर्तनों की स्थिति में मनुष्य की कल्पना प्रखर हो जाती है, तीव्र हो जाती है। उस प्रखर और तीव्र कल्पना में कुछ भी आत्मसात हो जाता है, कुछ भी दर्शन हो जाते हैं। यह आपको शायद ज्ञात न हो, दुनिया के जितने बड़े कवि, बड़े उपन्यासकार, बड़े नाटककार, बड़े कल्पना-प्रवण लोग हैं, इन सबको भी अपने पात्रों के दर्शन होते रहते हैं।
लियो टाल्सटाय एक लाइब्रेरी से गिर पड़ा था चलते वक्त। टाल्सटाय के नाम से हम सब परिचित होंगे। लाइब्रेरी पर चढ़ रहा था, सीढ़ियों पर, संकरा रास्ता था--रिस अरेक्सन नाम के उपन्यास को लिखता था उन दिनों--उसमें एक स्त्री पात्र उसके साथ चल रही थी। वह कहीं थी नहीं स्त्री, वह जो उपन्यास

लिख रहा था उसकी एक पात्र उसके साथ चल रही थी, उससे बातें करता हुआ सीढ़ियां चढ़ रहा था। संकरा था रास्ता। ऊपर से एक आदमी उतर रहा था, स्त्री को धक्का न लग जाए, दो के लायक रास्ता काफी था, लेकिन तीन के लायक नहीं था। और तीन आदमी होते तो भी निकल जाते, दो आदमी एक औरत जरा मुश्किल थी। और भी रास्ता छोटा था, अब एक औरत को धक्का न लग जाए दोनों तरफ से तो टाल्सटाय बचा, सीढ़ियों से नीचे गिरा, पैर टूट गया। दूसरा आदमी हैरान हुआ! उसने कहाः आप बचे क्यों, हम दो के लिए काफी रास्ता था? उसने कहाः दो कहां, वहां तीन थे, मेरी एक पात्र भी मेरे साथ थी। उसको बचाने के लिए गिर पड़ा। और यह कोई एकांगी घटना नहीं है, दुनिया के सभी कवियों, सभी उपन्यास लेखकों, सभी कल्पनाशील लोगों के साथ येह हुआ है, होता रहा है।
एलेक्जेंडर ड्यूमा कई बार, लोग हैरान हो गए उसके घर में। एक बार उसने पेरिस में अपना मोहल्ला बदला। पुराने मोहल्ले के लोग तो परिचित हो गए थे, नये मोहल्ले के लोग परिचित न थे। वह अपने कमरे के भीतर पहली ही रात किसी से तलवार लेकर इस भांति लड़ने लगा कि आस-पास के लोग परेशान हुए। कमरे में दो तरह की आवाजें भी आ रही थीं। दो आदमियों के होने का शक था। तलवारें खटाखट टकरा रही थीं। मोहल्ले के लोगों ने पुलिस को खबर कर दी कि कुछ गड़बड़ है भीतर। अंधेरी रात में, दरवाजें सब बंद हैं और यह नया आदमी आया है, भीतर तलवारें चल रही हैं और जोर की आवाजें आ रही हैं। दो तरह की आवाजें हैं, बड़ी क्रोध की आवाजें। पुलिस आ गई, दरवाजा तोड़ कर खोला गया। अलेक्जेंडर डयूमा अकेली तलवार लिए हुए कमरे के भीतर खड़े थे। लोग हैरान हुए! कहा कि दूसरा आदमी कहां गया आज? ड्यूमा थोड़े नशे से नीचे उतरे। पूछाः कौन सा दूसरा आदमी? अरे माफ करिए, वह तो मेरा एक पात्र है जो मैं नाटक लिख रहा हूं उससे द्वंद्व-युद्ध, ड्यूअल हो रहा है, तो आवाजें दो तरह की आती थीं। वे बोले, एक दफा मैं उसकी तरफ से बोलता था, एक अपनी तरफ से बोलता। ड्यूमा के लिए बहुत वास्तविक था वह दूसरा व्यक्ति।
अगर यह ड्यूमा कहीं भूले-भटके भक्त हो जाते, भक्ति के मार्ग पर चले जाते, इनको भगवान का दर्शन बहुत सरल था। अगर यह टाल्सटाय कहीं भक्त हो जाते तो जैसे इनके बगल में पात्र चल रहा था वैसे ही श्री कृष्ण भगवान, रामचंद्र जी या कोई और, वे भी चल सकते थे, उसमें कोई कठिनाई नहीं, उसमें कोई भेद भी नहीं है।
मनुष्य का मन है कल्पनाशील। कोई भी विचार और कोई भी धारणा को निरंतर दोहराने से आत्म-सम्मोहन पैदा होता है और वह कल्पना प्रत्यक्ष की जा सकती है। लेकिन यह कोई सत्य का अनुभव नहीं है। सत्य का अविर्भाव होता है, आत्मसात नहीं।
मैं यह कल निवेदन करूंगा कि चित्त कैसे समस्त विचारों से शून्य हो जाए, निर्विचार हो जाए--वही है ध्यान, वही है समाधि। उस समाधि में जो अनुभव होता है वह सत्य है। कोई विचार तब तक आपका नहीं है जब तक आपने आत्मसात किया हो। विचार तभी आपका है जब उसका अविर्भाव हो, वह आपके भीतर जन्मे। और वह तभी होगा जब आप सब विचारों को, सब धारणाओं को विदा दे दें। निसधारण, निर्विचार, सब धारणाओं से शांत और शून्य जब हो जाता है, वही खुद के विचार को, खुद की अनुभूति को, खुद के सत्य को उपलब्ध होता है।
आत्मसात नहीं करना है, अविर्भाव करना है। आत्मसात करने की प्रक्रियाओं ने ही मनुष्य के जीवन से परमात्मा को दूर किया है और मनुष्य के जीवन से धर्म को नष्ट किया है। धर्म तब सत्य की खोज न रह कर केवल कल्पना का खेल रह गया।
आज ही कोई मेरे पास आए थे और वे पूछते थे कि भक्तों को भगवान के दर्शन हुए हैं। और अगर हम उनका नाम न लेंगे तो फिर हमको दर्शन कैसे होगा? उनकी मूर्ति की कल्पना न करेंगे तो फिर दर्शन कैसे होगा?
नहीं दर्शन होगा, यह शुभ है। क्योंकि किसी भ्रम में और किसी कल्पना में पड़ जाने से कोई हित नहीं है। हां, यह हो सकता है कि सपना बहुत मधुर हो और बहुत अच्छा लगे, लेकिन फिर भी सपना सपना है, कल्पना कल्पना है, चाहे कितना ही सुख देती मालूम पड़े। और ऐसी कल्पना जो सुख देती हो उस कल्पना से खतरनाक है जो दुख देती हो। क्यों? क्योंकि दुख देने वाली कल्पना से जागना

आसान होता है और सुख देनी वाली कल्पना में तो और सोने का मन होता है, जागने की इच्छा नहीं होती है।
धन्य हैं वे लोग जो दुखद सपने देखते हैं क्योंकि उनका सपना तोड़ने की इच्छा पैदा होगी। और अभागे हैं वे लोग जो ऐसे सपने देखते हैं जो बहुत सुखद हैं क्योंकि फिर उन सपनों से जागने की इच्छा नहीं होती। वह बहुत घातक, बहुत विषाक्त, बहुत नशेली स्थिति हो जाती है।
तो मैं कोई आत्मसात करने को नहीं कह रहा हूं--किसी भी विचार, किसी भी धारणा, किसी भी कल्पना को, वरन यह कह रहा हूं कि सब धारणाएं, सब विचार, सब कल्पनाएं जब आपसे विदा हो जाते हैं तब शेष रह जाती है आपकी चेतना, उस शेष चेतना में प्रश्न उठे हों, उस शेष चेतना में समस्या मात्र खड़ी रह जाए--नग्न समस्या, नग्न प्रश्न, तो उस प्रश्न की पीड़ा में जब कोई कल्पना, कोई स्मृति उत्तर देने को न होगी, तो आपके प्राणों से ही उत्तर, आपके प्राणों से ही समाधान आएगा। वह समाधान आपका निजी अनुभव है, निजी विचार है। कोई आत्मसात करने से विचार आपका नहीं होता है, न हो सकता है, न होने का कोई उपाय है।

दूसरा प्रश्न भी कुछ पहले से ही संबंधित है।
पूछा हैः कि आप कहते हैं विचार करने को, लेकिन अकेले विचार करने से क्या होगा? मैं तो विचार करते-करते विचारों में ही डूब जाता हूं और आचरण तो बदल नहीं पाता, आचरण वही का वही रह जाता है। तो यह बताइए आचरण कैसे बदले?

सामान्यतः यह कहा जाता है कि विचार का क्या मूल्य है, मूल्य तो है आचरण का। यह बात एकदम ही झूठी और व्यर्थ है। यह इसलिए झूठी और व्यर्थ है कि आचरण तो बहुत गहरे में विचार की ही अभिव्यक्ति है। जहां विचार का बीज नहीं है वहां आचरण का पौधा भी नहीं हो सकता है। हां, यह हो सकता है कि झूठा आचरण ऊपर से ओढ़ लिया जाए। लेकिन झूठे आचरण का कोई भी मूल्य नहीं है सिवाय इसके कि उससे दूसरों को धोखा दिया जाता है और खुद का जीवन नष्ट होता है।
यह जो पूछा है कि अकेले विचार से क्या होगा? यह इसलिए पूछा है और इसलिए प्रश्न उठता है, अगर मैं आपसे प्रार्थना करूं, तो मैं यह कहूंगा, अभी आपके भीतर विचार का जन्म ही नहीं हुआ, आप दूसरों के विचारों को अपना विचार समझ रहे हैं। इसलिए विचार और आचरण में मेल बिठाने की समस्या खड़ी हो गई है। अगर आपका ही विचार होगा तो यह असंभव है कि उसके विपरीत आचरण हो जाए। अगर आपका ही विचार होगा तो आचरण तो विचार की छाया की भांति पीछे चलता है। जैसे बैलगाड़ी निकलती है, तो पीछे गाड़ी के चाक के निशान बन जाते हैं। वैसे ही जहां भी विचार का अविर्भाव होता है, वहीं पीछे आचरण की लीक और निशान बन जाते हैं। आचरण लाना नहीं पड़ता है, आचरण अपने आप आता है। विचार, विचार है केंद्र, विचार है प्राण, और विचार है आत्मा। लेकिन चूंकि हमारे पास अपने कोई विचार ही नहीं हैं, हमने सब विचार उधार सीखे हुए हैं। दूसरों के बासे और झूठे विचार हम इकट्ठे किए हैं और उसको अपनी संपत्ति समझे हुए हैं। उन झूठे और बासे विचारों में से आचरण नहीं निकलता है, इसलिए मुश्किल होती है। इसलिए सवाल यह उठता है कि विचार और आचरण में मेल कैसे हो?
यह निपट मूर्खतापूर्ण बात है। जहां विचार और आचरण में मेल बिठाने का खयाल आ जाए, वहां समझ लेना कि विचार बासा है, पुराना है, झूठा है, दूसरे का है, मेरा नहीं है। सत्य बोलना चाहिए और प्रेम करना चाहिए और पड़ोसी को वैसा ही प्रेम करना चाहिए जैसे अपने को। और किसी से धोखा नहीं, और किसी से झूठ नहीं, और चित्त में कोई व्यभिचार नहीं, कोई वासना नही, कोई कामना नहीं, ये सारे के सारे विचार दूसरों से लिए हुए हैं। इन सबके विपरीत आचरण है। तो बड़ी बेचैनी और तकलीफ होती है कि कैसे विचार और आचरण में मेल बैठे। नहीं बैठ सकता। नहीं बैठ सकता। और कोई रास्ता बैठने का नहीं है। यह बात बहुत मौलिक रूप से जाननी जरूरी है कि आचरण आपका है और विचार दूसरे के हैं। अगर आप चोर हैं, वह चोर होने का आचरण ही आपका है। और यह खयाल कि अचोरी धर्म है, चोरी न करना बड़ा पुण्य है, बड़ी ऊंची बात है, यह दूसरे का है। आचरण आपका है, विचार दूसरे का है, मेल कैसे होगा? विचार महावीर का होगा, बुद्ध का होगा,

कृष्ण का, क्राइस्ट का होगा, आचरण आपका है। महावीर का जो विचार था महावीर का आचरण उसके अनुकूल था, उसके पीछे था, उसकी छाया थी। आप विचार तो उधार ले लिए लेकिन आचरण कहां से उधार लाएंगे? आचरण तो नहीं ला सकते हैं महावीर का, बुद्ध का, क्राइस्ट का। विचार ला सकते हैं, विचार मुफ्त मिल जाता है, आचरण तो नहीं मिलता। सो विचार तो हैं बड़े-बड़ों का, आचरण है अपना। इन दोनों में बड़ा फासला हो जाता है, बड़ा द्वंद हो जाता है, बड़ी पीड़ा, बड़ा दुख हो जाता है। और भीतर... हो जाती है सतत चौबीस घंटे। जिसमें व्यर्थ ही नरक में सड़ना हो जाता है।
आचरण वही का वही रहता है। रोज कसमें लें, रोज व्रत लें, रोज मंदिर में जाकर प्रण करें, कुछ फर्क न पड़ेगा। विचार दूसरे के हैं, फिर कैसे फर्क पड़ेगा? जब ऐसा द्वंद दिखाई पड़े, तो जो विवेकशील है वह पहला निर्णय तो यह लेगा कि मैं, जो मेरा आचरण है उसे ही अपना वास्तविक होना फिलहाल समझूं, वही मैं हूं। और फिर मैं क्यों स्वीकार करूं किसी के विचार को। क्यों न मैं खोजूं? क्यों न मैं खुद विचारूं? क्यों न मैं जीवन के अनुभव से निकालूं? क्यों न मैं शांत होकर खुद अपने प्राणों में खोदूं और पाऊं कि क्या है? कभी आपने खुद खोदा है अपने भीतर इस बात को? कभी आपने अपने भीतर इस बात की तलाश की है क्या कि क्रोध आनंद नहीं ला सकता? कभी इस बात को अपने जीवन की पर्त-पर्त में आपने अनुसंधान किया है? नहीं, आप कहेंगे कि क्रोध तो बहुत बुरी चीज है, यह किसी और की बात आप दोहरा रहे हैं। यह आपके प्राण जिस दिन स्वयं अनुभव करते हैं कि क्रोध विष है, क्रोध दुख है, पीड़ा है। जिस दिन आपके प्राण इस संताप से भर जाते हैं क्रोध के दुख और विषाक्त होने से, उस दिन क्या संभव है कि फिर आप क्रोध कर सकें?
कभी जब आप क्रोध में रहे हैं तो क्या आपने शांत बैठ कर एक कोने में सब द्वार बंद करके खोज की है कि क्रोध में मेरा क्या हो रहा है? क्या आपने उस वक्त क्रोध की जलती हुई आग में अपने प्राणों को झुलसते हुए देखा है और दर्शन किया है? जब क्रोध जल रहा हो तब आप कभी मौन बैठ कर देखे हैं आंख डाल कर कि भीतर क्या हो रहा है? अगर एक बार भी यह देखा होता, और अगर एक बार भी क्रोध की पूरी जलन और झुलस और क्रोध की पूरी पीड़ा और नरक आपके सामने स्पष्ट हो गया होता, फिर कौन था जो आपको क्रोध में जाने के लिए दुबारा राजी कर सकता? लेकिन नहीं, यह कभी नहीं देखा है। हां, जब क्रोध चला जाता है और क्रोध का धुआं उड़ जाता है, तब हम गीता लेकर बैठ जाते हैं, महावीर वाणी लेकर बैठ जाते हैं, बुद्ध के वचन और सोचते हैं कि क्रोध तो बड़ी बुरी बात है, यह मैं कैसा बुरा काम कर रहा हूं, यह तो नहीं करना चाहिए।
ऐसी दोहरी मुश्किल हो जाती है। क्रोध अलग, क्रोध का पश्चात्ताप अलग। क्रोध अलग कष्ट देता है, क्रोध का पश्चात्ताप अलग कष्ट देता है। और यह पश्चात्ताप कोई अर्थ नहीं रखता। क्रोध तो अब चला गया, अब क्रोध को देखने का कोई उपाय न रहा। जब क्रोध था तब यह पूरे विवेक और विचार को लेकर अगर क्रोध का दर्शन किया होता तो वह दर्शन आपके जीवन में उस अनुभूति का जन्म देता जहां आप जानते कि क्रोध क्या है। और वह जानना, वह ज्ञान आपके आचरण को बदल देता।
मैं नहीं कहता कि क्रोध के लिए पश्चात्ताप करें, मैं कहता हूं, क्रोध
का दर्शन करें। मूढ़ हैं जो पश्चात्ताप करते हैं। जीवन भर पश्चात्ताप करेंगे कहीं पहुंच नहीं सकते। और पश्चात्ताप क्यों करते हैं आप? पता है इसलिए नहीं कि क्रोध बुरा है, पश्चात्ताप इसलिए करते हैं कि क्रोध के कारण जो आपको खुद पीछे से छाया मिलती है कि मैं कैसा दीन-हीन हो गया। क्रोध के पीछे, क्रोध के उतार पर जब आपको पता लगता है कि मैं कैसा दुष्ट सिद्ध हुआ क्रोध में, कैसी मैंने गालियां बकीं, कैसे मैंने अपशब्द कहे, तब आपके अहंकार को चोट लगती है। क्योंकि आप तो समझते हैं मैं बहुत भला आदमी हूं जो बुरी बातें कह नहीं सकता। अहंकार को लगती है चोट, तो फिर अहंकार को फिर से फुसलाने के लिए, फिर से सजाने के लिए पश्चात्ताप करते हैं। मंदिर में कसम खाते हैं, फिर निर्णय करते हैं अब कभी क्रोध नहीं करूंगा। और ऐसा निर्णय करके फिर सज्जन बन जाते हैं, फिर अक्रोधी बन जाते हैं, फिर भले आदमी बन जाते हैं। फिर क्रोध करते हैं, फिर पश्चात्ताप करते हैं। पश्चात्ताप

क्रोध के लिए नहीं है, खुद की आंखों में खुद की मूर्ति जो नीचे उतर आई है फिर उसको वापस उठाने के लिए। वह अहंकार की पूर्ति है, सप्लीमेंट्री है अहंकार के लिए। वह उसका हिस्सा पूरा कर देता है। अहंकार खंडित हो जाता है, फिर उसका हिस्सा पूरा कर देता है।
ये सब ब्रह्मचर्य की कसमें, ये सब कसमें हैं, यह विरक्त कि क्रोध नहीं करूंगा, ब्रह्मचर्य से रहूंगा, फलां-ढिंका, यह सब अहंकार के पूरक हैं। इनसे कुछ होता नहीं है। यह सब एकदम झूठे और मिथ्या हैं। हो सकता है कुछ, पश्चाताप से नहीं, बोध से, जब जो स्थिति चित्त को पकड़ती हो तब उसके प्रति सजग हों, जागें, उस स्थिति को खोजें कि क्या हो रहा है? उस स्थिति को पहचानें कि क्या हो रहा है? और अगर आपको दिखाई पड़ जाए उसका दुख और पीड़ा, तो कौन पागल है जो फिर उस दुख और पीड़ा में उतरना चाहेगा? लेकिन हमने कभी देखा नहीं।
मैं आपसे निश्चित रूप से कहता हूं, आपने बहुत बार क्रोध किया होगा, मैं फिर आपसे कहता हूं, आपने अभी क्रोध देखा नहीं। आप कहेंगे, इतनी बार क्रोध किया देखेंगे कैसे नहीं? अगर आप देखने में समर्थ होते तो क्रोध में असमर्थ हो जाते।
सच तो यह है कि जब आप क्रोध में होते हैं तब आपके भीतर देखने की क्षमता एकदम क्षीण हो जाती है। आप नशे में होते हैं, मूर्च्छा में होते हैं, बेहोश होते हैं। इसलिए हर आदमी क्रोध में वैसे काम कर सकता है जो जब वह होश में हो, शांत हो तो कल्पना भी नहीं कर सकता कि मैं कर सकता हूं। ढेर हत्यारों ने अदालतों के सामने यह कहा है कि हमने हत्या नहीं की। पहले तो अदालतें समझती थीं कि यह झूठ है, अब मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि यह सच है। उन्होंने इतने क्रोध के आवेश में हत्या की कि उस आवेश में उनके भीतर कोई कांशसनेस, कोई होश नहीं था, वे करीब-करीब बेहोश थे। इसलिए हत्या के बाद उनको याद नहीं आता कि मैंने हत्या की। अब मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि वे झूठ ही नहीं बोल रहे हैं। अनेक हत्यारे याद नहीं कर सके बाद में कि उन्होंने हत्या की है। उनको फांसी हो गई, उनको आजन्म कैद हो गई, वे जीवन भर सड़ते रहे। लेकिन वे यह स्मरण नहीं कर सके कि उन्होंने हत्या की है। वह यही कहते रहे कि मुझे याद ही नहीं पड़ता कि मैंने कभी किया।
क्योंकि जिस चित्त की दशा में उन्होंने यह किया उस चित्त की दशा में होश नाममात्र को भी नहीं था। तो फिर किसको स्मरण रहेगा? किसको याद रहेगा? जीवन में जो भी पाप है वह सब बेहोशी में किया जाता है। और पश्चात्ताप हम कब करते हैं जब बेहोशी चली जाती है। इन दोनों में कोई संबंध ही नहीं हो पाता। बेहोशी में पाप करते हैं, होश में पुण्य की कसमें खाते हैं, इसका कोई संबंध ही नहीं है, इसका कोई वास्ता ही नहीं होता। इसलिए रोज उसी गड्ढे में गिरते हैं जिसमें कल तय किया था कि अब कभी न गिरेंगे। रोज वही गड्ढा फिर सामने खड़ा है। दिन में दस बार खड़ा है। और तब हम रोते हैं, पछताते हैं और सोचते हैं ये महावीर और बुद्ध, ये कृष्ण और क्राइस्ट बड़े भगवान रहे होंगे तभी तो क्रोध के ऊपर उठ सके, हम कैसे ऊपर उठें, हम तो रोज निर्णय करते हैं, रोज गिर जाते हैं। नहीं, आप ही जैसे लोग थे, कोई इनमें भगवान नहीं है, कोई तीर्थंकर नहीं, कोई ईश्वर का पुत्र नहीं। आप ही जैसी हड्डियां हैं, आप ही जैसा मांस, आप ही जैसा सब कुछ है। आप ही जैसे जन्मते हैं, आप ही जैसे मरते हैं। कुछ विशिष्टता नहीं है। इस दुनिया में कोई मनुष्य विशिष्ट नहीं है। सभी एक जैसे मनुष्य हैं। और तब और भी आश्चर्यजनक मालूम पड़ता है कि एक आदमी कैसे ऐसा हो जाता है कि उसमें क्रोध विलीन हो गया? उसके भीतर कोई वासना की आग नहीं जलती? उसके भीतर कोई घृणा और ईर्ष्या पैदा नहीं होती?
मैं आपसे कहता हूं, हरेक के जीवन में यह हो सकता है। लेकिन हम करने के उपाय और विज्ञान से अपरिचित। उपाय और विज्ञान यह है कि अपने आचरण की निंदा दूसरे के विचार के आधार पर मत करिए, बल्कि अपने आचरण का अनुसंधान करिए। अपने आचरण का दर्शन करिए। अपने आचरण के प्रति बोध से सजग हो जाइए। बुरा मत कहिए उसे। क्योंकि जो बुरा कहेगा फिर देखने में असमर्थ हो जाता है। जिस आदमी को हम बुरा कहते हैं फिर हम नहीं चाहते कि वह हमारे घर आए, उसकी शक्ल भी हम देखना नहीं चाहते। तो जिस कृत्य को आप बुरा कह देते हैं, बुरा कहने

की वजह से आपके चित्त में और उस कृत्य में दीवाल खड़ी हो जाती है। बुरा मत कहिए क्रोध को, कोई हक नहीं है आपको बुरा कहने का, कोई हक नहीं है चोरी को बुरा कहने का। लेकिन जानिए कि यह चोरी क्या है जो मेरे भीतर है? पहचानिए बहुत शांति से, बहुत सहजता से। खोजिए कि क्या है यह क्रोध? क्या है यह काम? क्यूं है? क्या है? बहुत शांति से, बहुत तटस्थता से। बिना किसी कंडेमनेशन के उसको देखिए, दर्शन करिए। यह दर्शन जिस दिन आपका सहज पूरा हो जाएगा उस दिन आपके जीवन में क्रांति खड़ी हो जाएगी। उस दिन आपके अपने विचार का जन्म होगा। और उस विचार के विपरीत आचरण न कभी हुआ है और न हो सकता है।
इसलिए मैं नहीं कहता कि आप अपने विचार और आचरण में मेल बिठाइए। कृपा करके कभी मेल मत बिठाना। आचरण सच है आपका, जैसा भी है आचरण का दर्शन करिए। उस दर्शन से सत्य विचार का जन्म होता है। और वह सत्य विचार आपके आचरण में क्रांति बन जाता है। तब फिर बिना किसी आरोपण के, बिना किसी जबरदस्ती, बिना किसी सप्रेशन, बिना किसी दमन के आप एक नये मनुष्य को अपने भीतर जागते हुए अनुभव करते हैं। वह निज के अनुभव से उठे विचार का प्रतिफलन है।
इस संबंध में थोड़ी सी आपसे बात कही हैं। मेरी दृष्टि में ध्यान कोई काम, कोई प्रयत्न, कोई एफर्ट नहीं है। और इसलिए अगर आप कोई एफर्ट करेंगे, बहुत कोई चेष्टा करेंगे, तो आप ध्यान में नहीं जा सकेंगे। ध्यान तो एक विश्राम है। इसलिए कोई बहुत चेष्टा, कोई बहुत प्रयत्न, कोई बहुत प्रयास, कोई भीतर लड़ाई नहीं करनी है। जैसे नदी में कोई तैरता है, एक आदमी नदी में तैर रहा हो तो उसे हाथ फेंकने पड़ते हैं, धार काटनी पड़ती है, श्रम करना पड़ता है। ध्यान तैरने की तरह नहीं है, फिर ध्यान कैसा है? ध्यान है बहने की तरह। एक आदमी नदी में पड़ा हो और बहा जा रहा हो--न वह हाथ फेंकता है, न वह धार काटता है, वह चुपचाप पड़ा है और धार उसे लिए जा रही है। वह कोई प्रयास नहीं करता, वह सिर्फ बहता है। ध्यान तैरने की तरह नहीं है, ध्यान बहने की तरह है। तैरिए मत, बहिए।
एक पंद्रह मिनट के लिए सब प्रयास छोड़ दीजिए और कोई चेष्टा मत करिए, कोई उपाय नहीं करिए, कोई कोशिश मत करिए कि ऐसा बैठूं, ऐसा करूं, ऐसा सोचूं, ऐसा मन को लगाऊं। यह सब मत करिए। क्योंकि यह जो आप करेंगे तो आप ध्यान में कभी भी नहीं जा सकते हैं। क्योंकि आपके प्रयास से जो भी पैदा होगा वह आपकी बुद्धि से बड़ा नहीं हो सकता। आपके प्रयास से जो निकलेगा वह आपकी बुद्धि का ही हिस्सा होगा।
ध्यान आपकी बुद्धि का हिस्सा नहीं है। इसलिए कृपा करके आप कोई बहुत चेष्टा मत करिए। न तो कोई जबरदस्ती श्वास लीजिए, न श्वास रोकिए, न कोई बहुत एफर्ट, कोई प्रयास मत करिए। फिर करिए क्या? इतनी ही कृपा करिए कि बहुत रिलैक्सड, बहुत आराम से बैठ जाइए। बैठना भी जरूरी नहीं है, जब आप कई प्रयोग करते हों, लेट भी सकते हैं, खड़े भी हो सकते हैं, जैसा आपकी मौज में हो। कोई खास किसी आसन में कोई मूर्ति बन कर आपको बैठना नहीं है। आप कैसे भी हो सकते हैं, सवाल चित्त के भीतर की स्थिति का है। आपके आसन-वासन का नहीं है। इन बचकानी बातों में कभी भूल कर मत पड़िएगा कि आप ऐसे बैठेंगे तो भगवान हो जाएंगे, सिद्ध हो जाएंगे। और इस तरह की नाक पकड़ेंगे या उलटे खड़े होंगे तो यह हो जाएगा, वह हो जाएगा। इन सारी बच्चों जैसी बातों में भूल कर मत पड़ना। शरीर से कोई बहुत गहरा संबंध नहीं है ध्यान का।
ध्यान का संबंध भीतर चित्त की दशा से है। इसलिए शरीर को ऐसा छोड़ दीजिए
जो आपके लिए सबसे आरामपूर्ण स्थिति है उसमें, ताकि शरीर कोई बाधा न दे, बस इतना ही शरीर के साथ करना काफी है। और फिर भीतर क्या करिए? न तो कोई नाम स्मरण करना है, न कोई मंत्र-जाप करना है, न किसी बिंदु पर ध्यान करना है, न कोई ज्योति सोचनी है कि दीया जल रहा है, न कोई फूल खिल रहा है हृदय में, ये सब कल्पनाओं में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है। न कोई अच्छे-अच्छे दृश्य देखने हैं, न कोई स्वर्ग, पाताल, नरक ये सब देखने हैं। ये सब नहीं देखने हैं। न कोई भगवान को देखना है। परिपूर्ण शांत बैठ कर चारों तरफ जो भी हो रहा है उसके प्रति सिर्फ अवेयरनेस, होश, जागे हुए रहना है, बोध रखना है। यह सब हो रहा है--ट्रेन जा रही है, ऊपर से हवाई जहाज निकल सकता है, कोई पक्षी फड़फड़ाएगा पत्तों में और आवाज करेगा, कोई खांसेगा, कोई बच्चा रोएगा, कोई

चलेगा, कोई फिरेगा। चारों तरफ घटनाएं घट रही हैं। इन सारी घटनाओं के प्रति होश से, शांति से कि कोई भी घटना जो मेरे चारों तरफ घट रही है, कोई ध्वनि छोटी से छोटी मेरे बोध के बाहर न घटे, मेरा बोध सजग रहे, मैं पूरी तरह होश में रहूं, जो भी हो रहा है वह मुझे अनुभव हो, उसकी संवेदना मुझे हो, उसको मैं जानूं, उसको मैं पहचानूं कि वह हुआ। लेकिन उसके बाबत सोच-विचार में नहीं लग जाना है। एक कुत्ता भौंके तो आपको यह नहीं सोचना है कि यह किसका कुत्ता भौंक रहा है, यह काला है, कि सफेद है, कि लाल है, यह सब नहीं सोचना है। भौंक रहा है कुत्ता उसकी आवाज आपके भीतर आएगी, गूंजेगी, वह आपके होश में गूंजे और जाए। जैसी आए आने दें, जाए जाने दें। जो भी भीतर आए, आने दें, जाने दें। भीतर विचार चल सकते हैं, एकदम से आज ही शांत हो जाएंगे आवश्यक नहीं है। हजारों-हजारों साल से मनुष्य-जाति विचारों को पाल रही है, पोस रही है। बहुत पुराने मेहमान हैं, बहुत दिन से घर में रह रहे हैं। और हम भी अपने पूरे जीवन से उनको पाल रहे हैं, पोस रहे हैं।
तो इस भ्रम में कोई न रहे कि आज बैठें और वे विदा ले लें। वे आ सकते हैं, वे आएंगे, उनको क्या पता है कि आपने तय किया है कि अब उनको नहीं बुलाना है। उनको रोज बुलाते रहें तो वे आ जाते हैं, उसी खयाल में, उसी भ्रम में, पुराने प्रेम में वे चले आते हैं। तो उससे कोई बहुत घबड़ाहट की बात नहीं है, आने दें। उनको भी शांति से देखते रहें। जैसे वे आएंगे तो चले जाएंगे। कौन विचार कितनी देर रुकता है, आएगा और जाएगा, आप तो सिर्फ साक्षी बने बैठे रहें। आया और गया; न आपको रोकना है, न हटाना है कि अरे हटो यह कहां से विचार आया और ध्यान सब गड़बड़ हो गया। ध्यान गड़बड़ होने वाली चीज नहीं है। जब होता है ध्यान, गड़बड़ करने की इस जगत में कोई सामर्थ्य नहीं है। और जब नहीं होता तब आप गड़बड़ में ही कोई ध्यान गड़बड़ नहीं हो रहा है। जब ध्यान होता है तो गड़बड़ हो ही नहीं सकता। और जब नहीं होता तब आप गड़बड़ में हैं, ध्यान का कोई सवाल नहीं है। इसलिए कोई इसकी चिंता न करें कि यह डिस्टर्बेंस हो गया, यह विचार आ गया। नहीं, यह विचार आया, चला जाएगा, आपका क्या लेता-देता है।
आप शांत, मौन देखते रहें। श्वास चलेगी, अनुभव होगी, देखते रहें। एक कीड़ा काटेगा और हाथ से आपको उसे हटाना पड़ेगा, हाथ को हटाने दें और देखते रहें शांत। कोई आपको जबरदस्ती नहीं करनी है। एक ही ध्यान रहे कि जो भी हो रहा है, हाथ से कीड़ा हटाया या पैर की करवट बदली, या बीच में आंख खोली, या कोई विचार चला, या कोई कुत्ता भौंका, या कोई पक्षी बोला, एक ही बात ध्यान में रहे कि सबको मैं सुन रहा हूं, सबको मैं बोधपूर्वक जागा हुआ देखा रहा हूं। जैसे एक दीया हम जला दें तो दीया चारों तरफ जो भी हो उस पर प्रकाश फेंकने लगता है। ऐसे ही भीतर बोध का दीया जला रहे और चारों तरफ जो भी हो रहा है सब प्रकाशित हो, सब पर वह प्रकाश पड़ता रहे। धीरे-धीरे अभी पांच-सात मिनट में ही अगर इतना भी भीतर हम बोध सम्हाल पाएं, तो बोध के सम्हालते ही शांति आनी शुरू हो जाती है। अपूर्व शांति आनी शुरू हो जाती है।
एक मित्र ने आज ही मुझे आकर कहा कि बहुत वर्षों के बाद निरंतर उपाय किए हैं, कुछ नहीं हुआ। यह किया है, वह किया है, कुछ नहीं हुआ। लेकिन कल जब मैं सिर्फ बोध को साध कर बैठा, तो हैरान हो गया। यह क्या हुआ, यह मेरी कल्पना के बाहर था, जो हुआ।
होगा, वह कल्पना के बाहर होने वाला है। आपको पता भी नहीं, बिल्कुल अज्ञात और अननोन है जो होगा। उसकी कोई अपेक्षा आप नहीं कर सकते। उसका आपको कोई पता ही नहीं क्या होगा। ध्यान क्या होगा, इसको कुछ नहीं कह सकते आप। न कोई कल्पना कर सकते हैं। जो होगा वह अपूर्व है। वह कभी न जाना हुआ है। वह बिल्कुल अननोन है, वह बिल्कुल अज्ञात है। वह होगा तभी जब आपका यह सारा ज्ञात मन एकदम शांत हो जाए। और यह शांत हो जाएगा। बोध से मन शांत होता है। शांत होने से ध्यान का अवतरण होता है। ध्यान कोई आप नहीं करते, ध्यान उतरता है, ध्यान आपको घेर लेता है। ध्यान आपके चित्त के बाहर की स्थिति है। ध्यान आत्मा का स्वभाव है। जैसे ही चित्त शांत होता है ध्यान फैलने लगता है।
तो बहुत शांति से, बहुत एफर्टलेसली, बिना किसी तनाव के, मौन, थोड़े-थोड़े फासले पर सबको बैठ जाना है। बहुत आसानी से। आज तो यह प्रकाश हम यहां से

बुझा देंगे ताकि आप बिल्कुल अंधकार में अकेले हो जाएं। थोड़े-थोड़े फासले से बैठ जाएं। दूसरा छूता है तो आप भीड़ में बैठे रहते हैं और जरा मुश्किल हो जाता है। मित्रों को थोड़ा सा छोड़ दें कोई फिकर नहीं, अगर घास में बैठ जाएं तो कोई हर्जा न समझें।
तो अभी जरा रुक जाएं। लाइट बुझाने दें। सब लोग बैठ जाएं फिर इसे बुझा दें।
बस इतना खयाल रखें कि आपको आस-पास कोई छू तो नहीं रहा। क्योंकि व्यर्थ
वह छूता रहे तो आपको उसी का ध्यान बना रहेगा।
मैं मान लूं कि आप सब ऐसे बैठे हैं कि एक-दूसरे को नहीं छू रहे हैं। जगह कम है? जगह हमेशा ज्यादा है, फैलने की हिम्मत चाहिए। ठीक है, मेरी बात आपने समझ ली है। आंख बंद कर लेना है और बिल्कुल आसानी से बैठ जाना है। हमने कहा... आसान होने में कठिनाई नहीं पड़ेगी। कोई दूसरा आपको देख नहीं रहा है, किंतु वही भय बना रहता है हमें कोई देख न रहा हो। अजीब-अजीब तरह के भय हैं दुनिया में, सबसे बड़ा भय यह है कि दूसरा कहीं देख न रहा हो, न मालूम क्या सोचे। अंधेरा कर देते हैं कोई आपको न देख रहा है, आप बिल्कुल अकेले हैं। आप अपने को देखिए, फिकर छोड़ दीजिए बाकी लोगों की।
आंख बंद कर लेनी है, क्योंकि न कोई दूसरा आपको देख रहा है, न आप कृपा करके किसी दूसरे को देखने का उपाय करें। आंख आहिस्ता से बंद करनी है, जोर से भींचिए नहीं, नहीं तो वही टेंस हो जाती है, आंखों की पलकें तनावग्रस्त हो जाती हैं। छोड़ दें धीरे से जैसे आंख पर नींद आ गई और आंख बंद हो गई। धीरे से पलक छोड़ देनी है और वैसे ही हलके-फुलके फूल की तरह शांत होकर बैठ जाएं। रात अदभुत है, रात का सन्नाटा आपके भीतर उतर जाए तो अभी कुछ आपके भीतर फूल की तरह खिलेगा, दीये की तरह खिलेगा। कुछ भीतर अनुभव हो सकता है। मौके को न छोड़ें, एकदम शांत... सब भांति तनाव-शून्य करके बैठ जाएं।
आंख बंद कर लें, आंख हलके से बंद कर लें। सिर का सब तनाव छोड़ दें। सबसे ज्यादा भार सिर पर होता है। माथे पर खिंचाव हम छोड़ दें, सिर के ऊपर सारा भार छोड़ दें, जैसे सब बोझ उतार कर नीचे रख दिया। चेहरे पर बिल्कुल तनाव छोड़ दें। छोटे-छोटे बच्चों का चेहरा होता है तनाव-शून्य, वैसा ही तनाव-शून्य चेहरा कर लें। स्मरण करें, जब आप छोटे से बच्चे थे; वैसा ही चेहरा, वैसा ही सब हलका और ढीला छोड़ दें।
अब भीतर जाग जाएं। जैसे भीतर हम कुछ जागे हुए हैं, होश से भरे हुए हैं। कोई धीमी सी आवाज, कोई धीमी सी ध्वनि भी, कोई भी आवाज, कोई भी ध्वनि सुनाई पड़ सके, इतने संवेदनशील सजग होकर बैठ जाएं। भीतर जैसे एक दीया जल गया है।
और भीतर हम बिल्कुल होश में जागे हुए हैं।
अब सुनें, सब भांति होश से भरे हुए सुनें। दस मिनट के लिए शांति में हो जाएं। बिल्कुल अकेले बैठे हैं, जैसे घने जंगल में बिल्कुल अकेले बैठे हुए हैं। रात्रि बिल्कुल शांत और सन्नाटे से भरी है। और बहुत सजग बैठे हैं। थोड़ी सी ध्वनि भी, थोड़ी सी आवाज भी सुनाई पड़ रही है। एकदम जागे हुए हैं। धीरे-धीरे सन्नाटा उतरने लगेगा। धीरे-धीरे मन शांत होता जाएगा। श्वास का कंपन तक अनुभव होने लगेगा। श्वास का कंपन तक अनुभव होने लगेगा। देखें और मात्र देखते रहें। सुनें और मात्र सुनते रहें। मन शांत हो रहा है। देखें, भीतर देखें, सब शांत होता जा रहा है... बाहर भी सन्नाटा है, भीतर भी सन्नाटा प्रविष्ट हो रहा है। भीतर पग-पग शांत होते जा रहे हैं। देखें, भीतर जाग कर देखें, धीरे-धीरे मन शांत होता जा रहा है, एक अपूर्व शांति उतर आती है।
मन शांत होता जा रहा है... मन धीरे-धीरे बिल्कुल शांत हो जा रहा है... बस जागे हुए हैं और सब शांत होता जा रहा है... मन धीरे-धीरे शांत होता जा रहा है... एक अपूर्व शांति उतरने लगेगी। शांति उतर रही है... उतर रही है... मन की पर्त-पर्त शांत हो जाएगी। जैसे शांति की वर्षा हो और सारा मन धुल जाए।
मन शांत हो रहा है... देखिए, मन कैसा शांत हो रहा है। मन के इस शांत होने
को समझें, यही सूत्र है। देखें, मन कैसा शांत हो रहा है। मन के शांत होने को समझें, यही सूत्र है। मन शांत हो रहा है... मन धीरे-धीरे एकदम शांत हो जाएगा। आप बिल्कुल मिट जाएंगे और सिर्फ शांति रह जाएगी। आप मिट जाएंगे, सिर्फ शांति रह जाएगी।

चित चकमक लागै नहीं
छठवां प्रवचन

निर्विचार

बीते दो दिनों में मनुष्य के मन की दो स्थितियों पर विचार किया है। पहले दिन अविचार के संबंध में थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। अविचार विश्वास और श्रद्धा से जन्म पाता है। और अविचार में जो अपने को बंद कर लेते हैं वे जीवन-सत्य को जानने से वंचित हो जाते हैं। कल विचार का जन्म कैसे हो, इस संबंध में हमने विचार किया। केवल उनके ही चित्त विचार को अविर्भाव दे पाते हैं जो विश्वासों, श्रद्धाओं और मान्यताओं से मुक्त होते हैं। जो इतना साहस करते हैं कि परंपराओं और समाजों के द्वारा दी गई अंधी धारणाओं को तोड़ने में अपने को समर्थ बना लेते हैं, केवल उनके भीतर ही उस विचार का जन्म होता है; जो स्वतंत्रता लाता है और सत्य की दिशा में गति देता है।
आज हम निर्विचार के संबंध में थोड़ी सी चर्चा करेंगे। निर्विचार से मेरा क्या प्रयोजन है उसको कहने के पहले हम कैसे विचारों के जाल में खड़े हैं, उस संबंध में दो बात कर लेनी जरूरी हैं। मनुष्य का मन चौबीस घंटे ही किसी न किसी भांति के विचारों के तंतुओं से घिरा रहता है। एक भीड़ भीतर चलती रहती है। कभी-कभी उसका हमें बोध भी होता है। अधिकांशतः बोध भी नहीं होता। जैसे भीतर एक काम जारी रहता है। भीतर एक दौड़ जारी रहती है। उस दौड़ के प्रति अगर हम पूरे जागें तो शायद घबड़ा जाएं। शायद हमें ज्ञात हो कि कोई पागल मनुष्य हमारे भीतर बैठा हुआ है। यदि घंटे भर को भी हमारे मन की पूरे विचारों का ताना-बाना हमें स्मरण में आ जाए, तो जीवन में बहुत चिंता, जीवन में बहुत संताप का उदय हो, क्योंकि तब दिखाई पड़े कि यह हमारे भीतर क्या चल रहा है। बहुत कम लोगों को खयाल है उनके भीतर क्या हो रहा है? विचारों की इतनी असंगत स्थिति है, स्व-विरोधी विचारों की इतनी भीड़ है। एक-दूसरे विचार से द्वंद्व करने वाले विचार भीतर इकट्ठे हैं, इतनी कांफ्लिक्ट है। इसी द्वंद्व ने, इसी विचारों के अंतर-संघर्ष में मनुष्य के मन की सारी शक्ति क्षीण हो जाती है। और जिस मनुष्य के मन की शक्ति क्षीण हो जाती हो वह भीतर इतना निर्बल हो जाता है कि सत्य की खोज में उसकी कोई गति संभव नहीं है। इसके पूर्व कि कोई सत्य की खोज में अग्रसर हो, जीवन को अनुभव करने चले, उसे मन के तल पर यह जो शक्ति का निरंतर ह्नास हो रहा है, यह जो शक्ति निरंतर क्षीण हो रही है, इस ह्नास से छुटकारा, इस शक्ति का संचय। मन में द्वंद्व से मुक्ति आवश्यक है।
शायद आपको खयाल न आया हो, तो कभी एक घंटा एकांत में, जो भी मन में चलता
हो उसे बैठ कर लिखें। ईमानदारी से लिखें। जो भी और जैसा चलता हो। तो उस घंटे भर में आपको अंतर-दर्शन होगा इस बात का कि मेरा मन कैसे जाल में बुना हुआ है। उसमें ऐसी-ऐसी बातें होंगी जिसकी आपने कल्पना न की होगी और जो कभी आप अपेक्षा न करते होंगे कि मेरे भीतर हो सकती हैं। उसमें भजन भी होंगे, उसमें गालियां भी होंगी, उसमें अच्छे-अच्छे शब्द आत्मा-परमात्मा भी होंगे। उसमें अपशब्द भी होंगे, उसमें घृत से घृत और घृणित से घृणित भावनाएं भी होंगी, और अत्यंत जघन्य अपराधों की आकांक्षाएं भी होंगी। और ऐसी इच्छाएं होंगी जिनको देख कर आप चौंक जाएंगे। और इन सबके बीच कोई संबंध भी नहीं होगा, ये सब असंबंधित एक-दूसरे से विरोधी होंगी। एक विचार से मन दूसरे विचार पर कूद जाएगा। एक इच्छा से दूसरी इच्छा पर कूद जाएगा। इस घंटे भर में अगर बहुत स्पष्ट ईमानदारी से आपने वही लिखा है जो आपके मन में चल रहा है तो आप बहुत चौंक जाएंगे। आपको शक होगा कि क्या मैं पागल तो नहीं हूं?
जहां तक मैं देख पाता हूं, पागल में और सामान्य मनुष्य में कोई बहुत बुनियादी भेद नहीं होता है, नहीं हो सकता है। पागल हमारे भीतर से ही पैदा होता है, वह हमारी एक ग्रोथ है, वह हमारा ही विकास है। हम जिस स्थिति में हैं हममें से कोई भी किसी भी क्षण पागल हो सकता है। अंतर हममें और पागल में गुणात्मक नहीं है, केवल परिमाण का है, मात्रा का है, डिग्री का है।

हमारे भीतर जो ताप और उत्तप और फीवरिस विचारों की दौड़ है, अगर वह थोड़ी
और उसकी डिग्रीज बढ़ जाए तो हमारे भीतर से कोई भी व्यक्ति पागल हो सकता है। मनुष्य-समाज में बहुत कम लोग हैं जो स्वस्थ हैं, अधिक लोग कम या ज्यादा पागल की स्थिति में हैं। जितने पागलपन से सामान्यतयाः काम चल जाता है उतने पागलपन का हमें बोध नहीं होता, स्मरण नहीं होता। जो पागलपन हमें सामान्य जीवन से बिल्कुल तोड़ देता है तभी हमें उसका बोध होता है।
ऐसी विक्षिप्त विचार की स्थिति में कैसे कोई जीवन-सत्य की तरफ गति हो सकती है। और यह मैं किसी और से नहीं कह रहा हूं, बिल्कुल आपसे ही कह रहा हूं। और इस तथ्य को जान लेना अत्यंत आवश्यक है, विचार की जो अतिशय दौड़ है, द्वंद्वात्मक, स्व-विरोधी, सेल्फ-कंट्राडिक्ट्री भावनाओं की जो स्व-विरोधी स्थिति है, वही मनुष्य को अति तनाव की स्थिति में विक्षिप्त कर देती है, पागल कर देती है। इसलिए आपको इस बात से बहुत आश्चर्य नहीं होगा कि दुनिया जिनको बहुत बड़े विचारक मानती है, उनमें से अधिक लोग पागल हो जाते हैं। इसलिए जब कोई कहता है, महावीर बड़े विचारक थे या बुद्ध बड़े विचारक थे, तो मुझे हंसी आती है कि ये कोई भी विचारक नहीं थे, ये निर्विचार को उपलब्ध व्यक्तित्व थे। ये पागल होने से बिल्कुल दूसरे कोने पर खड़े लोग थे। विक्षिप्तता एक एक्सट्रीम है, एक अति है चित्त की और विमुक्तता दूसरी स्थिति है। हम सारे लोग इन दो के बीच कहीं डोलते हैं।
अगर विचारों का तनाव और विचारों का भार बढ़ता चला जाए तो हम विक्षिप्त होने की तरफ बढ़ते चले जाते हैं। अगर विचारों का भार और तनाव क्षीण होता जाए और चित्त शांत और मौन होता जाए और एक ऐसी स्थिति में पहुंच जाए, ऐसी निस्तरंग स्थिति में जहां कोई भी विचार का कंपन नहीं है, तो हम विमुक्त होने के करीब पहुंच जाते हैं। दो बिंदु हैं मनुष्य के चित्त के--विमुक्ति और विक्षिप्तता। सामान्यतः हम जो भी जीवन में करते हैं उससे हम विक्षिप्त होने की तरफ बढ़ते चले जाते हैं। धर्म, साधना दूसरी दिशा में ले जाने का आग्रह करती है और आमंत्रण देती है।
पहली बात है इस तथ्य के प्रति जागना कि हम या तो पागल हैं या पागल होने
के करीब हैं। इस तथ्य के प्रति नहीं जागेंगे तो इस तथ्य से छुटकारे की आकांक्षा भी भीतर पैदा नहीं हो सकती। सोते-जागते पागलपन सरक रहा है। कोई भी जोर का धक्का लग जाएगा और पागलपन बाहर प्रकट हो जाएगा। उसे हम भीतर छिपाए हुए चल रहे हैं। निकटतम मित्र भी नहीं जानता हमारे भीतर क्या चल रहा है। पत्नी नहीं जानती, पति के भीतर क्या चल रहा है, पति नहीं जानता पत्नी के भीतर क्या चल रहा है। वह सब भीतर चल रहा है रोग की तरह, उसको हम दबाए हैं और छिपाए हैं। उसे हम प्रकट नहीं होने देते। लेकिन किसी बड़े धक्के में-- कोई परिजन मर जाए, मकान में आग लग जाए, धन डूब जाए, प्रतिष्ठा मिट जाए, उस गहरे धक्के में वह जो भीतर छिपा है घाव की तरह फूट पड़ता है और पागलपन बाहर प्रकट हो जाता है।
इस पागलपन के कारण न केवल व्यक्ति भीतर पीड़ित होता है, बल्कि पूरा समाज भी पीड़ित होता है। इस पागलपन के सामूहिक उभार भी आते हैं। इस पागलपन की सामूहिक अभिव्यक्तियां भी होती हैं। यह पागलपन कभी-कभी भीड़ को भी पकड़ लेता है--पूरे समाज को, पूरे देश को, पूरी मनुष्य-जाति को भी पकड़ लेता है। यह जो सारी दुनिया में कहीं हिंदू-मुस्लिम दंगे होते हों या मराठी- गुजराती लड़ता हो या कोई हिंदुस्तानी-पाकिस्तानी लड़ता हो या कोई और मुल्क और कोई कौम लड़ती हो, यह सब सामूहिक पागलपन की ज्वर अभिव्यक्तियां हैं। वह जो भीतर व्यक्तियों के चलता रहता है जब बहुत घनीभूत हो जाता है और उसके व्यक्तिगत उपाय नहीं रह जाते मिटने के, तो सामूहिक रूप से प्रकट हो जाता है।
इसलिए आपको यह मैं कहना चाहूंगा और इस तथ्य पर शायद आपका कभी ध्यान न गया हो। जिन दिनों दुनिया में युद्ध चलता है, उन दिनों पागल होने की संख्या कम हो जाती है। पहले महायुद्ध में जब यह हुआ, तो सारी दुनिया के मनुष्य-तत्ववेत्ता बहुत परेशान हुए कि यह क्या हुआ? जितने दिनों तक पहला महायुद्ध चलता था, उन दिनों पागल होने की औसत संख्या कम हो गई, उन दिनों आत्महत्याओं की संख्या कम हो गई, उन दिनों हत्याओं की संख्या कम हो गई, उन

दिनों अपराध कम हुए। फिर दूसरा महायुद्ध आया तब तो और अजीब हो गया। बहुत बड़े जोर से एकदम से आत्महत्याएं, हत्याएं, पागलपन कम हो गए। तब बहुत चिंता हुई, बहुत विचार पैदा हुआ कि यह क्यों होता है?
युद्ध की स्थिति में सामूहिक रूप से पागलपन निकल जाता है, इसलिए व्यक्तिगत पागल होने की संख्या कम हो जाती है। आपको भी जो युद्ध में रस आता है उसका कोई और कारण नहीं है--जब भी दुनिया में कहीं युद्ध चलते हैं लोग बड़े प्रफुल्लित हो जाते हैं। उनके चेहरों पर चमक आ जाती है, उनके जीवन में गति आ जाती है, त्वरा आ जाती है, वे प्रसन्न मालूम होते हैं। वे सुबह जल्दी उठते हैं, अखबार पढ़ते हैं, रेडियो से खबर सुनते हैं। दिन भर युद्ध की चर्चा करते हैं। जैसे एक बड़ा उत्साह जीवन में छा जाता है जब भी युद्ध होता है। क्यों? वह युद्ध हमारे व्यक्तिगत पागलपन का निकास बन जाता है। रास्ते पर दो लोग लड़ रहे हों। आप हजार काम छोड़ कर खड़े होकर देखने लगते हैं, क्यों? आपके भीतर जो पागलपन है उसको निकास का एक अवसर मिल जाता है। जहां भी हिंसा है, जहां भी घृणा है, जहां भी उपद्रव है, खून है, हत्या है, जासूसी कहानियां हैं, डिटेक्टिव फिल्में हैं, इन सबको देखने में रस क्या है? इनको देखने में रस भीतर जो आपके चलता है उसे बाहर देख कर थोड़ा सा रिलैक्शेसन, थोड़ा सा भीतर तनाव कम हो जाता है। और इसलिए हर दस-पांच वर्षों में एक बड़े युद्ध की जरूरत हो जाती है। राजनीतिज्ञ लाख कोशिश करें, सिर पटकें और मर जाएं, दुनिया में शांति नहीं हो सकती, युद्ध से बचा नहीं जा सकता। जब तक कि व्यक्तिगत चित्त में पागलपन की स्थिति को कम न किया जाए तब तक युद्ध होता ही रहेगा। बहाने बदल जाएंगे। कारण बदल जाएंगे। लोग धर्मों के नाम से लड़ते थे, लोग राष्ट्रों के नाम से लड़ेंगे। भाषाओं के नाम से लड़ेंगे, इज्म और आइडियोलॉजी के नाम पर लड़ेंगे, कम्युनिज्म और डेमोक्रेसी के नाम पर लड़ेंगे। मुद्दे बदल जाएंगे, लड़ाई जारी रहेगी। आज पांच हजार वर्ष की कथा यह कहती है कि लड़ाई बंद नहीं हो सकती। राजनीतिज्ञ कुछ भी कहें, शांति की कितनी ही गुहार मचाएं, कितना ही चिल्लाएं कि विश्व में शांति होनी है। विश्व में शांति नहीं हो सकती। नहीं होगी। उस समय तक जब तक हम इस तथ्य को न समझेंगे कि युद्ध राजनीतिक बात नहीं है, बल्कि व्यक्तिगत पागलपन जब इतना घनीभूत हो जाता है, सारे समूहों के भीतर चित्त जब इतना रुग्ण हो जाता है, उसके निकास का कोई उपाय नहीं रह जाता और सामूहिक रूप से पागलपन प्रकट हो जाता है।
दूसरे महायुद्ध में पांच करोड़ लोगों की हत्या हुई। उससे थोड़ी राहत मिली हमको। दस-पंद्रह वर्ष हम चुप बैठेंगे। लेकिन इस बीच फिर पागलपन इकट्ठा होगा। अब हम दस करोड़ या पंद्रह करोड़ से कम पर राजी नहीं हो सकते हत्या किए बिना। और यह गति अगर बढ़ी तो इस सदी के पूरा होते-होते वह स्थिति हो सकती है कि हम शायद पूरी मनुष्य-जाति को समाप्त करें, तो ही हमारे पागलपन को राहत मिल सकती है, नहीं तो कोई राहत नहीं मिल सकती।
यह जो व्यक्ति के चित्त में चलती हुई तनाव की, टेंशन की, फीविरस, बुखार जैसी स्थिति है, यह जीवन को सब भांति क्षीण करती है, जीवन को सब भांति नीचे गिराती है। फिर बहाने कुछ भी हो सकते हैं। बहानों से कोई संबंध नहीं है। वह मनुष्य के भीतर इस चित्त की स्थिति को कैसे परिवर्तित किया जाए? कैसे व्यक्ति विचारों की अत्यधिक भीड़ से निर्विचार शांति की तरफ गतिवान हो? उस संबंध में आज सुबह दो-तीन बात आपसे कहना चाहता हूं। लेकिन उसके पहले यह जरूरी था कि मैं आपसे यह कहूं, यह स्थिति है। और स्मरण रखें, यह मैं किसी और से नहीं कह रहा हूं। नहीं तो अक्सर यह होता है कि जब मैं कह रहा हूं तब आप सोचते होंगे कि बात तो बिल्कुल ठीक हैं, लोगों के साथ ऐसा ही मामला है। अपने को छोड़ कर आप सोच लेंगे, तो कोई हल नहीं होने वाला है। हम, हमारा गणित ऐसा है, आप जरूर चित्त में सोचते होंगे कि बिल्कुल ठीक है, पड़ोसी जो आपके बैठे हैं, इनके साथ सब ऐसी ही बात है। उससे कोई हल नहीं होगा। यह बात आपके साथ है, आपके पड़ोसी से इसका कोई संबंध नहीं है।
अपने पर ही आपको थोड़ा विवेकपूर्ण होकर विचार करना पड़ेगा कि क्या मैं भीतर पागल हूं? अगर पागल हूं, तो इस पागलपन को लेकर आप हिंदू हो जाएं तो कोई फर्क नहीं पड़ता, और गीता पढ़ें तो कोई फर्क नहीं पड़ता, और कुरान पढ़ें तो

कोई फर्क नहीं पड़ता। पागल आदमी कुरान पढ़ेगा, दुनिया में खतरा आएगा, कुरान से खतरा आएगा। पागल आदमी गीता पढ़ेगा, गीता से खतरा आएगा। पागल आदमी मंदिर जाएगा, मंदिर उपद्रव का कारण बन जाएगा। पागल आदमी मस्जिद जाएगा, मस्जिद झगड़े पैदा करेगी। पागल आदमी जो भी करेगा उससे दुनिया में कोई, कोई शांति, कोई प्रेम का, कोई ज्ञान का, कोई सत्य का जन्म नहीं हो सकता। पागल जो भी करेगा वही उपद्रव शुरू हो जाएगा।
इसलिए पागल कुछ करे इसके पहले सबसे बेहतर और सबसे जरूरी और सबसे आवश्यक यह है कि वह उस पागलपन को समझे और उस पागलपन से मुक्त होने का क्या कोई मार्ग हो सकता है? क्या कोई रास्ता हो सकता है? फिर ही उसका कोई भी काम सार्थक हो सकता है। नहीं तो उसके सब काम व्यर्थ होंगे। वह सेवा करने जाएगा और उपद्रव खड़ा करेगा। वह प्रेम की बातें करेगा और दूसरे की गर्दन में सिर्फ पंजे कस लेगा। बातें उसकी प्रेम की होंगी कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। प्रेम की बातें होंगी, थोड़ी देर में पाया जाएगा प्रेम नहीं है। उससे ज्यादा दुश्मन, उससे ज्यादा शत्रु कोई नहीं है। वह बातें कुछ भी करे, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह शांति की बातें करेगा, थोड़ी देर में तलवार निकाल लेग, कहेगा, शांति की रक्षा के लिए अब बिना तलवार के कुछ हो ही नहीं सकता।
अभी इस मुल्क में हमने सुना न कि अब अहिंसा की रक्षा के लिए हिंसा की जरूरत आ गई थी। अगर आदमी पागल है तो अहिंसा की रक्षा के लिए भी तलवार निकाल लेगा और कहेगा अहिंसा की रक्षा के लिए अब हिंसा की जरूरत है। पागल आदमी जो भी करेगा वह और गहरे पागलपन में ले जाएगा। इसलिए पहला तथ्य तो पागलपन के प्रति जागरूक होना है। और पागलपन मैं किस बात को कह रहा हूं-- द्वंद्वग्रस्त चित्त, कांफ्लिक्ट में पड़ा हुआ मन, भीतर ऐसे बहुत से विचारों की भीड़ से घिरा हुआ मन, जिनमें उसे कुछ सूझता नहीं, जिनमें उसे कोई विकल्प दिखाई नहीं पड़ता। ऐसा मन पागल होने की तैयारी में है या पागल है या पागल हो जाएगा।
विलियम जेम्स एक दफा पागलखाना देखने गया। पागलखाने में उसने कुछ पागल देखे। वह लौट कर आया, फिर रात भर सो नहीं सका। बार-बार उठ कर बैठने लगा। उसकी पत्नी ने पूछा कि क्या बात है, क्यों परेशान हैं? उसने कहाः मैं परेशान हूं आज, मैं पागलखाना गया था पागलों को देखने, वहां मुझे एक भय मेरे मन में समा गया कि जो इनके साथ हुआ है वह किसी भी क्षण मेरे साथ भी तो हो सकता है। मेरी नींद उड़ गई है। मैं बहुत डरा हुआ हूं। मेरे प्राण कंप रहे हैं। उसकी पत्नी ने कहाः व्यर्थ, व्यर्थ की चिंता कर रहे हैं, कौन कहता है आप पागल हो सकते हैं? विलियम जेम्स ने कहाः कोई और नहीं कहता, मैं खुद ही समझ रहा हूं। जो मैंने आज उनकी आंखों में देखा है, जो आज मैंने उनके कानों में देखा है, जो उन पर वज्रपात हुआ है वह किसी भी क्षण मुझ पर भी हो सकता है। क्योंकि मैं भी उन्हीं जैसा मनुष्य हूं। पागल होने के पहले वे जैसे मनुष्य थे वैसा ही मनुष्य मैं भी हूं। मुझमें उनमें कोई बुनियादी भेद नहीं है। तो जो उन पर घटा है वह मुझ पर भी घट सकता है। उसके बाद विलियम जेम्स ने लिखा है कि तीस साल मेरे बड़ी बेचैनी के साल थे, तीस साल जिंदा रहा उसके बाद। उसने लिखा मैं प्रतिक्षण घबड़ाया हुआ था कि वह पागलपन कभी भी मेरे ऊपर आ सकता है।
मैं भी आपसे कहूंगा, कभी पागलखाने में जाएं और थोड़ा गौर से देखें, आपको अपनी ही शक्ल वहां दिखाई पड़ेगी थोड़ी बढ़ी हुई मात्रा में। आप पाएंगे कि यह मैं ही हूं जो थोड़ा आगे बढ़ गया हूं।
हम सब जब तक चित्त द्वंद्वग्रस्त है, जब तक चित्त भीतर विरोधों से भरा है, भीतर विरोधी विचारों के बीच डांवाडोल हो रहा है, तब तक हम सब उसी ट्रेम्बलिंग में हैं, उसी कंपन में हैं, जो किसी भी क्षण विस्फोट को उपलब्ध हो सकती है। क्या रास्ता है? क्या करें? क्या हो कि चित्त द्वंद्व से और विचारों की भीड़ से मुक्त होता चला जाए?
तीन सूत्र आपके विचार के लिए कहना चाहता हूं। पहली बात, हमारे मनों में खाली होने से बड़ा भय है, बड़ा फीयर है। और हमें सिखाया गया है खाली मत होना। क्योंकि खाली मन जो है वह शैतान का घर है। यह हमें बताया गया है। वह

डेवल्स वर्कशॉप, जो खाली मन है वह तो शैतान का घर हो जाता है। मैं आपसे कहता हूंः खाली मन ही परमात्मा का घर होता है। भरा हुआ मन ही शैतान का घर है। खाली होने से एक भय सिखाया गया है कि कभी मन को खाली मत करना। कभी खाली मत बैठना। एंप्टीनेस के प्रति, रिक्तता के प्रति एक भय व्याप्त है।
और इसलिए हम कोई भी भीतर कभी खाली होने को तैयार नहीं हैं। आंतरिक रूप
से हम अपने को भरे रखना चाहते हैं। किसी न किसी चीज से भरे रखना चाहते हैं। सुबह उठते हैं अखबार पढ़ने लगते हैं ताकि अपने को भर लें, खाली नहीं रहना चाहते। अगर अकेले बैठे हैं तो मित्रों से मिलने चले जाते हैं, क्लब चले जाते हैं, रेडियो खोल लेते हैं, टेलीविजन या कुछ और या गीता या कुरान या कुछ पढ़ते हैं। खाली कोई नहीं बैठा रहना चाहता। क्योंकि खाली होने से डर है एक भीतर, खालीपन का एक व्यर्थ डर और भय है, व्यर्थ तो नहीं है, शायद कुछ कारण है उसकी मैं बात करूं।
खालीपन का एक भय है और कोई भी खाली नहीं रहना चाहता। चौबीस घंटे अपने
को भरे रखना चाहते हैं। जब बिल्कुल खाली होते हैं कोई रास्ता नहीं रह जाता तो शराब पीते हैं या रेडियो सुनते हैं या सो जाते हैं, लेकिन खाली रहने को हम बिल्कुल भी तैयार नहीं हैं। क्यों, यह भय क्यों है? इस भय के पीछे कुछ बुनियादी कारण हैं। पहला बुनियादी कारण तो यह है कि अगर हम खाली हो जाएं, खाली बैठे हों और भीतर मन धीरे-धीरे खाली रहने लगे, तो हमें डर होगा कि हम तो नोबड़ी हो गए, ना-कुछ हो गए, हमारे पास तो कुछ भी नहीं है। ना-कुछ होने का भय है। कुछ होने की आकांक्षा है। मैं कुछ हो जाऊं। मैं कुछ हो जाऊं। इस आकांक्षा से हम धन इकट्ठा करते हैं। जितना ज्यादा धन होगा मेरे पास उतना मैं कुछ हो जाऊंगा, समबड़ी हो जाऊंगा। मैं फिर साधारणजन नहीं हूं, मैं फिर विशिष्टजन हूं। इसलिए हम धन इकट्ठा करते हैं, इसलिए हम यश इकट्ठा करते हैं ताकि मैं कुछ हो जाऊं। और इसलिए हम शक्ति इकट्ठी करते हैं ताकि मैं कुछ हो जाऊं, और इसलिए हम विचार भी इकट्ठे करते हैं ताकि मैं कुछ हो जाऊं। कहीं ऐसा न हो कि मैं ना-कुछ रह जाऊं, मुझे कुछ होना है।
यह कुछ होने की दौड़ सब भांति के संग्रह में ले जाती है। और सबसे सूक्ष्म संग्रह विचारों का संग्रह है। जिस आदमी के पास बहुत विचार होते हैं, जो बहुत विचारों से भरा होता है, उसको हम पंडित कहते हैं, उसको हम आदर देते हैं। जिसको उपनिषद पूरे कंठस्थ हों, गीता पूरी याद हो, हम कहते हैं, धन्य हैं ये। जिसे सारे शास्त्र याद हों, हम कहेंगे, पूजा के योग्य हैं ये। विचार के संग्रह को हम आदर देते हैं, विचार के संग्रह को हम ज्ञान समझते हैं। इसलिए हम भी विचार का संग्रह करने में जुट जाते हैं कि जितना हमारे पास विचार का संग्रह होगा उतना मैं ज्ञानी हूं, उतना मैं कुछ हूं। यह जो कुछ होने का दौड़, एंबीशन और महत्वाकांक्षा है, यह हमें खाली नहीं रहने देती, यह हमें खाली नहीं होने देती। यह हमें डर पैदा करती है कि अगर मेरे पास कोई संग्रह न रहा तब तो बड़ा मुश्किल हो जाएगा।
क्राइस्ट ने कहा हैः धन्य हैं वे जो आत्मिक रूप से दरिद्र हैं। अदभुत बात कही है। पुअर इन स्प्रिट। धन्य हैं वे जो आत्मिक रूप से दरीद्र हैं। अजीब बात कही है। हम सब तो आत्मिक रूप से समृद्ध होना चाहते हैं। क्यों यह बात कही है? क्यों यह खयाल उस आदमी को आया? आत्मिक रूप से दरिद्र होने का मतलब हैः खाली आदमी। जिसके पास भीतर कुछ भी नहीं है--कोई विचार नहीं है, कोई ज्ञान नहीं है। लेकिन क्यों है वह धन्य? वह धन्य इसलिए है कि जैसे ही वह खाली होगा, जैसे ही भीतर वह ना-कुछ होने को राजी हो जाए, जैसे ही भीतर वह नथिंगनेस को, ना-कुछ होने को स्वीकार कर लेगा, जैसे ही वह जान लेगा कि सच ही मैं ना-कुछ तो हूं, तो कुछ होने की दौड़ में मैं क्यों पडूं? और क्या मैं कुछ होने की दौड़ से कुछ हो सकूंगा या कि कोई कभी कुछ हो सका है? जिस दिन वह यह पूरी अनुभूति को उपलब्ध हो जाता है, इस समझ को, इस अंडरस्टेंड़िंग को कि मैं ना-कुछ हूं, और ना-कुछ होने को राजी हो जाता है, उसी दिन उस स्पेस में, उस खाली जगह में परमात्मा का, सत्य का या जीवन का या जो भी हम नाम दें उसका अनुभव शुरू हो जाता है। उसी दिन वह दरिद्र होकर सही अर्थों में समृद्ध हो जाता है। उसी दिन वह खाली होता है, उसी दिन वह भर दिया जाता है। वर्षा में पानी गिरता है, जो भरे हुए पहाड़ हैं बड़े-बड़े, वे उस पानी से वंचित रह जाते

हैं, पानी गिरता है और बह जाता है। लेकिन जो गहरे खड्ढे हैं, खाइयां हैं, वे भर जाती हैं और झीलें हो जाती हैं। जो खाली हैं गड्ढे वे भर जाते हैं और जो भरे हुए टीले हैं वे खाली रह जाते हैं।
परमात्मा की यह वर्षा निरंतर और प्रतिक्षण हो रही है। जीवन भी प्रतिक्षण बरस रहा है। जो भीतर खाली हैं वे भर जाएंगे, जो भीतर भरे हुए हैं वे खाली रह जाएंगे। लेकिन हम सब भरने की दौड़ में अपने को भरते चले जाते हैं--भीतर से भी, बाहर से भी। बाहर वस्त्र इकट्ठे करते हैं, धन इकट्ठा करते हैं, मकान इकट्ठा करते हैं। भीतर विचार इकट्ठे करते हैं, शास्त्र इकट्ठे करते हैं, शब्द इकट्ठे करते हैं। भीतर इनको इकट्ठा करते हैं, बाहर इनको इकट्ठा करते हैं। जब किसी को इस पागलपन का बोध भी होता है कि मैं अपने को भर कर ही खाली रखता हूं, भरने की वजह से ही मैं उस चीज के भरने से वंचित रह जाऊंगा जो मुझे भरती तो मेरे प्राण पुलकित होते और अमृत को उपलब्ध होते, जब उस किसी को यह खयाल होता है तो वह घर छोड़ता है, मकान छोड़ता है, पत्नी- बच्चे छोड़ता है, लेकिन भीतर वह शब्द और शास्त्र जो भरे हैं उनको फिर भी नहीं छोड़ता। बाहर का मकान किसी को भरता नहीं है, बाहर के मित्र और प्रियजन किसी को भरते नहीं हैं, लेकिन भीतर के आग्रह और भीतर के विचार भरते हैं। जो उनको छोड़ने को राजी हो जाता है वही संन्यासी है। जो भीतर से सब शब्दों और विचारों को छोड़ कर खाली होने को तैयार हो जाता है वही त्यागी है वही अपरिग्रही है।
विचार का अपरिग्रह पहला सूत्र है। विचार के प्रति अपरिग्रह का भाव। विचार को इकट्ठा नहीं करना है, छोड़ना है, जाने देना है, ताकि वही रह जाए मेरे भीतर वही जो विचार नहीं है। बल्कि मेरी आत्मा है, मेरी सत्ता है, मेरा स्वत्व है, वही जो मेरा एक्झिस्टेंस है, मेरा आथेंटिक बीइंग है, वही रह जाए और सारे विचार का ऊहापोह चला जाए, सारे विचार झड़ जाएं। अकेला वही रह जाए जो मेरी शुद्ध सत्ता है। उस शुद्ध सत्ता एकांत अनुभव में उस शुद्ध सत्ता के खाली अनुभव में जो उपलब्ध होता है वही सत्य है, वही आत्मा है, वही परमात्मा है या कोई और नाम। विचार के प्रति अभी हमारा परिग्रह का भाव है, इकट्ठा करो।
अभी मैं यहां आपसे बोल रहा हूं आप मेरे विचारों को इकट्ठा करके ले जा सकते हैं। मेरे विचार आपके भीतर इकट्ठे होकर आपका नुकसान करेंगे। आपका कोई हित नहीं कर सकते। वह भीड़ और आपके भीतर बढ़ जाएगी। वहां और कुछ लोग विराजमान थे, मैं भी वहां बैठ जाऊंगा। वहां वैसे ही काफी लोग भरे हुए थे, कोई जगह न थी, और एक आदमी आपके भीतर चला गया। और कुछ विचारों ने जाकर आपके भीतर जाकर उत्पात शुरू हो जाएगा।
विचार के प्रति परिग्रह का भाव न रखें। उसे इकट्ठा नहीं करना है। उसे इकट्ठा कर-कर के भीतर भीड़ नहीं इकट्ठी करनी है। उसे रटना नहीं है। उसे याद नहीं करना है। उससे स्मृति को नहीं भर लेना है। फिर क्या करना? उसके प्रति एक अपरिग्रह का भाव हो। अपरिग्रह के भाव का अर्थ है कि संग्रह मुझे नहीं करना है। समझ और बात है, संग्रह और बात है। मैं जो कह रहा हूं उसे समझना और बात है, उसे संग्रह करब लेना और बात है। महावीर ने, बुद्ध ने, कृष्ण ने जो कहा है उसे समझना और बात है, उसे संग्रह कर लेना और बात है। समझ संग्रह नहीं है। समझ संग्रह नहीं है, समझ मैं कोई संग्रह नहीं होता। और जहां संग्रह होता है वहां समझ नहीं होती। संग्रह वही करना चाहता है जो समझ नहीं पाता। जो समझ पाता है संग्रह का कोई प्रश्न नहीं होता। हम केवल उन्हीं बातों को याद रखना चाहते हैं जिन बातों को हम नहीं समझ पाते। जिन बातों को हम समझ पाते हैं उन्हें याद नहीं रखना होता। उन्हें याद रखने का कोई प्रश्न नहीं रह जाता, उनको मेमोरी में रखने का, स्मृति में रखने का कोई प्रश्न नहीं रह जाता।
संग्रह का भाव न हो, जीवन को समझने का भाव हो। समझने के भाव से ज्ञान उपलब्ध होता है। संग्रह की वृत्ति से पांडित्य उपलब्ध होता है। पांडित्य और ज्ञान बिल्कुल शत्रु हैं। पंडित कभी ज्ञानी नहीं होता है। और ज्ञानी के पंडित होने की कोई वजह नहीं है, कोई कारण नहीं है।

एक मौलिक रूप से यह ध्यान जीवन में रहे कि मैं विचारों को संग्रह करने
के पीछे तो नहीं पड़ा हूं? क्या होगा, संग्रह से क्या होगा? सब संग्रह उधार होगा, दूसरों का होगा। समझ, समझ मेरी होगी, अपनी होगी, संग्रह हमेशा दूसरों से होगा। समझ मेरी होगी, संग्रह दूसरों से होगा। संग्रह बासा और उधार होगा। समझ ताजी, फ्रेश, जीवंत और युवा होगी। समझ मुक्त करती है, संग्रह बांधता है। समझ मुक्त करती है, समझ स्वतंत्र करती है। संग्रह बांधता है, जंजीरों की तरह जकड़ लेता है।
जो लोग शब्द और शास्त्र के संग्रह में पड़ जाते हैं उन्हें समझना कठिन
हो जाता है। वे कुछ भी नहीं समझते फिर। वे समझ ही नहीं सकते। क्योंकि जहां समझ मुक्ति चाहती है, ताजगी चाहती है। बासापन नहीं, उधारपन नहीं, वहां संग्रह सब उधार कर देता है। वे जब जीवन को भी देखते हैं तो अपने शब्दों को बीच में लेकर देखते हैं। शब्द बीच में आ जाते हैं, जीवन उस तरफ खड़ा रह जाता है।
एक बार ऐसा हुआ चीन में एक बहुत बड़ा बाजार भरा हुआ था, एक बड़ा मेला भरा हुआ था। एक कुआं था उस मेले के पास ही, बहुत भीड़-भाड़ थी, और एक आदमी उस कुएं में गिर पड़ा। कुएं पर कोई पाट न था, कोई किनार न थी। कोई आदमी उसमें गिर पड़ा। वह जैसे ही गिरा था, वह नीचे से चिल्लाया कि मुझे बचाओ! इतना शोरगुल था वहां कौन सुनता। लेकिन वह बौद्ध भिक्षु उस कुएं के पास से निकलता था, उसे आवाज सुनाई पड़ी, उसने कुएं में झांक कर देखा, वहां एक आदमी डूब रहा है। उस आदमी ने प्रार्थना की कि मुझे बचाओ! लेकिन उस बौद्ध भिक्षु ने कहाः मित्र, अपने कर्मों का फल भोग रहे हो, भोगो, कर्म का फल तो भोगना ही पड़ता है। मेरे बचाने से क्या होगा, कोई किसी को बचा सकता है? शास्त्र में क्या लिखा है कोई किसी को नहीं बचा सकता। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में परिरमण ही नहीं कर सकता। मैं क्या कर सकता हूं? और मैं अगर किसी तरह बचाने की भी कोशिश करूं, तो मैं और कर्मों का बंध करूंगा राह दिखला कर कि मैंने तुमको बचाना चाहा। तो उचित है कभी कोई पाप किया होगा, उसका फल भोग रहे हो, उसको भोग लो, ताकि आगे के लिए निपटारा हो जाए।
ये शास्त्र बोल रहे थे, जीवन सामने खड़ा था। एक आदमी डूब रहा था, शास्त्र बीच में आ गए। वह भिक्षु चला गया उससे कह कर कि मन को शांत रखो। शांत रखने से सब होता है। और जो विपत्तियां आई हैं वे तुम्हारे कर्मों का फल है, उसको भोग लो। भोगने से उसकी निर्जला हो जाएगी।
वह आदमी चिल्लाता रहा, भिक्षु आगे चला गया। उसके पीछे से एक कनफ्यूशियन मांक आया। एक कनफ्यूशियस को मानने वाला भिक्षु आया। वह आदमी चिल्ला रहा था। उसने झांक कर देखा, उसने कहा कि हजार बार कहा है कनफ्यूशियस ने कि अगर राज्य ठीक न हो तो बड़े उपद्रव होते हैं। राज्य ठीक नहीं है। इसलिए कुआं बिना पाट का है। मैं अभी जाता हूं और एक आंदोलन खड़ा करता हूं कि राज्य बदले, क्रांति हो, सब कुओं पर पाट होने चाहिए। नहीं तो लोग बड़ी मुश्किल में पड़ जाते हैं, कि देखो यह आदमी मर रहा है। वह आदमी मरता था, उसने चिल्ला कर लोगों को इकट्ठा किया कि मित्रो, आओ, यह देखो, राज्य की भूल, जब राज्य भूल में होता है तो सब भूल हो जाती है। कनफ्यूशियस का ऐसा मानना है कि राज्य ठीक हो तो सब ठीक हो जाए। भिक्षु गया और भीड़ भरे बाजार में चिल्लाने लगा, देखो मित्रो, राज्य की गड़बड़ी, कुएं पर पाट नहीं है, एक आदमी डूब रहा है, मर रहा है। लेकिन उसे निकालने का कोई सवाल ही नहीं उठा। उसने भी कोई बात नहीं की। क्योंकि कनफ्यूशियस के शास्त्र बीच में आ गए। पीछे से एक ईसाई मिशनरी भी आया, उसने देखा कि वह आदमी डूब रहा है। उसने फौरन स्मरण किया कि क्राइस्ट ने कहा है कि मनुष्य की सेवा ही परमात्मा की सेवा है। वह जल्दी से कूदा और उस आदमी को निकाल कर बाहर लाया। शायद आप सोचेंगे कि इस तीसरे आदमी ने बहुत बेहतर काम किया, नहीं, यह भी न करता, इसके बीच में भी शास्त्र हैं, इसने भी मनुष्य को नहीं बचाया। इसने भी नहीं बचाया। इसने भी जीवन से इसका कोई संबंध नहीं है। इसने भी शास्त्र में लिखा है कि मनुष्य की सेवा परमात्मा की सेवा है, इसलिए कूदा और बचा लाया है। यहां भी शास्त्र बीच में ही खड़ा है, जीवन यहां भी नहीं है।

यह कहानी किसी ईसाई मिशनरी ने गढ़ी है, लेकिन उसे यह पता नहीं है कि इस तीसरे मामले में भी वही बात है जो दो मामलों में थी, उनके शास्त्रों में वह लिखा था उन्होंने वह किया, इसके शास्त्र में यह लिखा था इसने यह किया। लेकिन तीनों के बीच में शास्त्र हैं, जिंदगी नहीं है, जीवन नहीं है।
जीवन को देखना उसके बहुविध रूपों में और उसे समझना और उस जीवन की समझ
से जो कृत्य निकले वह कृत्य मुक्तिदायी है। वह कृत्य वह जो जीवन की समझ से आता है वही कृत्य धर्म है। लेकिन शब्द और शास्त्र सब तरफ जीवन को, सब तरफ जीवन और हमारे बीच एक दीवाल खड़ी कर देते हैं। पंडित समझने में असमर्थ हो जाता है। यही तो वजह है कि दुनिया के सारे धर्मों के अलग-अलग पंडित लड़ते हैं। धर्म क्या बौद्ध हो सकते हैं? सत्य एक है, तो धर्म भी एक ही है। पंड़ित बहुत प्रकार के हैं। शास्त्र बहुत प्रकार के हैं, संप्रदाय बहुत प्रकार के हैं। और पंड़ित लड़ता है क्योंकि वह दूसरे को समझ ही नहीं सकता। उसके अपने शब्द बाधा दे देते हैं, उसके शब्द बीच में खड़े हो जाते हैं और दूसरे को समझना असंभव हो जाता है। और तब इस नासमझी से लड़ाइयां पैदा होती हैं। धार्मिक विरोध पैदा होता है। सारी दुनिया में धर्म लड़ते हैं। पंड़ित समझने में असमर्थ होता है इसलिए कलह पैदा होती है। जहां समझ है वहां कोई कलह नहीं हो सकती। जहां अंडरस्टेंडिंग है वहां कोई विरोध, वहां कोई कलह नहीं हो सकती। वहां तो होगा प्रेम। वहां घृणा नहीं हो सकती। वहां तो होगा प्रेम जो दूसरे को समझ पाता है।
तो स्मरण रखें, आप कितने ही शब्दों, शास्त्रों को और विचारों को इकट्ठा कर लें, इससे आपकी कोई समझ नहीं बढ़ जाएगी। समझ संग्रह नहीं करती है। समझ देखती है परिपूर्णता में, समझ, अंडरस्टेंडिंग, चीजों के प्रति जागती है उनकी परिपूर्णता में। उस जागरण में ही, उस बोध में ही भीतर ज्ञान का जन्म होता है। उस ज्ञान का कोई संग्रह नहीं होता। वह ज्ञान कहीं इकट्ठा नहीं होता। वह ज्ञान सारे प्राणों को परिवर्तित करता है। सारी आत्मा को पवित्र करता है। सारी आत्मा को नया करता है, नया जीवन देता है। इसलिए उसका कोई बोझ नहीं होता। इसलिए उसका कोई भार नहीं होता। इसलिए उसके कारण जीवन और हमारे बीच कोई दीवाल खड़ी नहीं होती है।
विचार के संग्रह की भूल को समझें, विचार के संग्रह की भूल को समझें और स्मरण रखें कि जितना भीतर विचार की भीड़ कम हो और ज्ञान का अविर्भाव हो, जितना भीतर विचार का संग्रह कम हो और ज्ञान की मुक्तिदायी हवाएं बहें, समझ पैदा हों, उतना ही आपके जीवन में निर्विचार होने की तरफ समाधि की तरफ गति हो सकती है।
इसलिए मैंने कहा, पहला सूत्र हैः विचार के प्रति अपरिग्रह। विचार के प्रति अपरिग्रह होगा तो अनिवार्यतया दूसरा सूत्र फलित होगा। विचार के प्रति ममत्व-त्याग होगा। अभी तो हम कहते हैं, मेरा विचार, कौन सा विचार आपका है? लेकिन अगर थोड़ा विवाद हो जाए, तो आप कहते हैं, मेरा विचार, मेरा धर्म, मेरा शास्त्र, मेरे तीर्थंकर, मेरे भगवान, यह मेरा कैसे प्रविष्ट हो रहा है आपके भीतर? विचार कौन सा आपका है? एक भी विचार है जो आपका है? थोड़ा खोदें, थोड़ा विश्लेषण करें, थोड़ा एनालाइज करें, थोड़ा एक-एक विचार को पकड़ें और पहचानें यह मेरा है? पाएंगे, यह मेरा नहीं है, आया है। यह कहीं से आया है, यह तैरता हुआ आया है हवाओं में और मेरे भीतर बैठ गया। मेरा कहां है। कोई विचार आपका कहां है। आया होगा कहीं से। घूमा होगा कहीं से। आपके भीतर निवासी बन गया है। सब विचार मेहमान हैं, कोई विचार आपका नहीं है। लेकिन जब हम कहते हैं, मेरा विचार, तो फिर विचार से एक पकड़ पैदा होती है, एक आइडेंटिटी, एक तादात्म्य पैदा होता है। फिर विचार की सुरक्षा पैदा होती है, फिर विचार को हम बचाना चाहते हैं, जाने नहीं देना चाहते। क्योंकि जो भी मेरा हो जाता है फिर मैं उसे बचाने लगता हूं, वह मेरी संपत्ति हो गई, वह मेरी संपदा हो गई। फिर वह मेरे प्राण का हिस्सा हो गया।
इस बात को भी समझना, जानना, इस तथ्य के प्रति भी जागना अत्यंत आवश्यक
है कि मैं जानूं कि कोई विचार मेरा नहीं है। जैसे ही यह खयाल स्पष्ट होगा कि कोई विचार मेरा नहीं है, वैसे ही विचार के प्रति ममत्व छूट जाएगा। मेरे होने का भाव छूट जाएगा। और जिसके प्रति मेरे होने का भाव छूट जाता है उसके

और हमारे बीच का संबंध टूट जाता है। वह ममत्व भी मेरे और उसके बीच जोड़ने वाली कड़ी है। ममत्व ही जोड़ने वाली कड़ी है। और कोई कड़ी नहीं है जो विचारों से हमारे मन को जोड़ती है और चिपकाती है। ममत्व कड़ी है। यह मेरा विचार। अगर आप जैन हैं और कोई जैन धर्म को गाली दे दे, तो आपके प्राण कंपित हो जाते हैं, मेरा धर्म और उसने गाली दी। अगर आप ईसाई हैं और कोई ईसाई धर्म को बुरा कह दे, तो आप लड़ने को खड़े हो जाते हैं कि मेरा धर्म और उसने बुराई की और निंदा की। वह जो मेरा है वह चोट खा जाता है फौरन और आपके अहंकार को सजग कर देता है। फिर आप विचार के लिए मरने तक को राजी हो जाते हैं, विचार के लिए कुर्बानी देने को राजी हो जाते हैं। विचार के लिए कितनी कुर्बानियां दी हैं लोगों ने। आइडियोलॉजिक्ली कितने लोग मरे हैं। और उन मरने वालों को समझाने वाले लोग भी हैं जो कहते हैं कि बेफिकर रहो, अगर इसलाम के लिए मरते हो तो जन्नत तुम्हारी, स्वर्ग तुम्हारा है। अगर हिंदू धर्म के लिए मरते हो तो स्वर्ग तुम्हारा है। दुनिया में मनुष्य को मारने के लिए जितनी बेवकूफियां सिखाई गई हैं उतना उसे जीवित रहने के लिए नहीं सिखाई गई कोई बात। तुम शहीद हो गए तो फिर तुम्हारी मजार पर मेले जुड़ेंगे। विचार के लिए मर जाओ, कम्यूनिज्म के लिए मर जाओ, डेमोक्रेसी के लिए मर जाओ। और मरने को जब कोई राजी हो जाता है तो सोचें कि उसका ममत्व कितना गहरा होगा, वह अपने प्राण खोने को राजी होता है विचार के लिए और विचार है बिल्कुल पराया। वह अपनी आत्मा को खोने को, अपने जीवन को खोने को राजी हो जाता है। और मूढ़ताएं गहरी हैं इसलिए हम उसका आदर करते हैं कि बहुत बड़ा काम किया, इसलाम के लिए मरा, हिंदू धर्म के लिए मरा, जैन धर्म के लिए मरा। बहुत महान त्याग किया, लेकिन तथ्य क्या है?
तथ्य यह है कि विचार के साथ उसका ममत्व इतना गहरा हुआ कि विचार खोने
को राजी नहीं हुआ, प्राण खोने को राजी हो गया। प्राण अपने थे, विचार बिल्कुल पराया था। यह ममत्व इस दूर तक चला जाए तो फेनेटिसिज्म में पागलपन पैदा होता है। दुनिया में रिलीजियस फेनेटिक्स ने सभी जमीन को इतनी हत्या और मूर्खता से भरा है कि जिसका कोई हिसाब नहीं। और उसके पीछे एक ही कड़ी है कि हम विचार के प्रति ममत्व को पैदा करते है। मेरा... मेरा हुआ कि फिर मरने को भी राजी हो जाते हैं। क्योंकि फिर वह हमारे अहंकार का हिस्सा हो जाता है। नहीं, विचार को अगर मुक्त होना है तो उस कड़ी को तोड़ना पड़ेगा जो विचार को मेरा बनाती है। और तोड़ने के लिए कोई बहुत चेष्टा की जरूरत नहीं है, क्योंकि कड़ी बिल्कुल झूठी है। कड़ी है ही नहीं, केवल खयाल है, केवल कल्पना है। कोई विचार आपका नहीं है। बताएं मुझे कोई विचार जो आपका हो? कौन सा विचार आपका है? गीता का होगा, कुरान का होगा, बाइबिल का होगा, कृष्ण का होगा, महावीर का होगा, किसी का होगा। आपका कौन सा विचार है? कोई विचार आपका नहीं है। सब विचार पराए और उधार हैं। ये जो पराए और उधार विचार हैं इनके साथ ममत्व बांध लेना, फिर चित्त में उपद्रव की बुनियाद रख दी गई है।
इस सत्य को समझें कोई विचार मेरा नहीं है। इसलिए कोई विचार इस योग्य नहीं कि मैं उसे इतने अपने से जोडूं। जैसे-जैसे समझ गहरी होगी, ममत्व क्षीण होगा। जैसे-जैसे दिखाई पड़ेगा सब विचार पराए हैं, वैसे-वैसे विचार के लिए लड़ना, विचार के लिए संघर्ष करना हवा में छायाओं के लिए लड़ने जैसा है। वह लड़ाई करीब-करीब वैसी है जैसी आपने एक कथा सुनी होगी।
एक गांव के दो पंडित नदी के किनारे खड़े थे। पांडित्य में ही जीवन गंवाया था। इसलिए न तो उनके पास कोई खेत था, न कोई गाय थी, न कोई भैंस थी। पर दोनों के मन में विचार था कि कोई खेत बने। तो दोनों विचार करते थे और उन दोनों ने सोचा कि हम नदी के पार कोई जमीन ले लें। एक ने कहा कि यह तो ठीक है कि नदी के पार हम जमीन ले लें, मैं भी जमीन लूं, तुम भी जमीन लो, लेकिन इस बात का ध्यान रखना कि तुम्हारे जानवर कभी मेरे खेत में न घुस जाएं। उसने कहा कि भई जानवरों का तो कोई पक्का विश्वास भी नहीं घुस भी सकते हैं। अब जानवरों के पीछे हम कहां पड़े रहेंगे। उस दूसरे व्यक्ति ने कहाः यह नहीं हो सकता। उसमें तो मित्रता अपनी खंडित होगी। जानवर घुसें तो मैं बरदाश्त नहीं कर सकता। उसने कहाः तुम क्या करोगे आखिर? जानवरों की हत्या ही कर दूंगा भाई। तो उसने कहाः ये रहे मेरे खेत और ये रहे मेरे जानवर। कहां है

तुम्हारा खेत? उसने जमीन पर डंडे से एक लकीर खींची और कहाः यह रहा मेरा खेत। उस दूसरे आदमी ने भी बगल में गोल घेरा खींचा और कहाः यह रहा मेरा खेत। उसने अपनी भैंसें उसके खेत में घुसा दीं, उसने दो लकीरें खींच दीं, उसने कहाः ये मेरी भैंस घुसीं, करो क्या करते हो? उस आदमी ने उसकी भैंसें काट दीं। भैंसें तो जमीन पर रेखा, रेखा मात्र थीं। लेकिन दोनों गुथ गए एक-दूसरे से। अदालत में मुकदमा गया। और उन्होंने अदालत में एक मुकदमा चलाया कि मेरे खेत में इसने भैंसें घुसाई हैं, उन भैंसों के पीछे झगड़ा हुआ, मार-पीट हो गई।
मजिस्ट्रेट ने पूछाः यह खेत कहां है? ये भैंसें कहां हैं? उसने कहाः उनकी बात छोड़िए। वह अभी हम लेने वाले हैं खेत। भैंसें हम खरीदने वाले हैं। यह करीब-करीब विचार का झगड़ा उन खेतों का झगड़ा है जो कहीं भी नहीं हैं।
उन भैंसों का झगड़ा है जो कहीं भी नहीं हैं। केवल छायाओं का झगड़ा है। लेकिन छायाएं ही इतनी महत्वपूर्ण हो जाती हैं कि हम उनके लिए प्राण दे सकते हैं। जरूर मनुष्य के जीवन में बहुत गहरी मूढ़ता होगी, नहीं तो यह नहीं हो सकता था। वे सब शहीद जो विचारों और धर्मों के नाम पर हुए हैं, जरूर निपट अज्ञानी रहे होंगे, नहीं तो यह नहीं हो सकता था। विचार के लिए सारी लड़ाई मूर्खतापूर्ण है। और वह लड़ाई खड़ी होती है ममत्व के भाव से। और ममत्व के भाव से विचार हमसे चिपकते हैं और भीतर इकट्ठे होते चले जाते हैं। फिर छोड़ने में प्राण कंपते हैं। सब विचार दूसरे हमें सिखाते हैं। फिर हमारे छोड़ने में प्राण कंपते हैं।
बर्ट्रेंड रसल ने लिखा है कि मैं जब सोचता हूं और बहुत समझ के क्षणों में होता हूं, तो मुझे लगता है कि बुद्ध से महान व्यक्ति दुनिया में नहीं हुआ। लेकिन वैसे ही मेरे प्राण डरने लगते हैं और मेरे मन में आता है क्राइस्ट से बड़ा? कभी ऐसा हो नहीं सकता कि बुद्ध क्राइस्ट से बड़े हों। लिखा है कि मैं बहुत जब समझ के क्षणों में होता हूं तो मुझे लगता है बुद्ध बहुत अदभुत व्यक्ति हैं, इनसे बड़ा व्यक्ति नहीं हुआ, लेकिन तभी मेरे भीतर कोई बात घबड़ाहट पैदा करने लगती है। वह जो बचपन से सिखाया हुआ संस्कार है कि क्राइस्ट ईश्वर के पुत्र हैं, उनसे बड़ा कोई भी नहीं। वह कहने लगता है कि नहीं-नहीं यह कैसे हो सकता है कि क्राइस्ट से बड़ा कोई हो? लिखा है कि बहुत सोचता हूं, सब समझता हूं, लेकिन इस बात से छुटकारा नहीं होता। विचार ऐसा पकड़ लेते हैं भीतर कि समझ से ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाते हैं। यह नहीं कह रहा हूं कि क्राइस्ट छोटे हैं या बुद्ध बड़े हैं। ये सब पागलपन की बातें हैं। कोई छोटा या बड़ा नहीं है। लेकिन विचार इतने गहरे पकड़ लेते हैं, ममत्व इतना गहरा हो जाता है कि समझ से बड़े हो जाते हैं। और हम समझ को खोने को राजी हो जाते हैं और विचार को खोने को राजी नहीं होते। यह पागलपन का लक्षण है। समझ के लिए विचार खोने की हमेशा तैयारी होनी चाहिए और विचार के लिए समझ खोने की कभी तैयारी नहीं होनी चाहिए। लेकिन हम हमेशा क्षुद्रतम विचारों के लिए सारी समझ खो देते हैं।
हिंदुस्तान-पाकिस्तान का बंटवारा हुआ। जिन लोगों ने हिंदुओं की हत्या की या जिन लोगों ने मुसलमानों की हत्या की वे कैसे लोग थे? हम हीं जैसे लोग थे, हम हीं थे। रोज मस्जिद जाने वाले लोग, रोज कुरान पढ़ने वाले लोग, गीता पढ़ने वाले लोग। लेकिन बस यह खयाल कि मैं हिंदू हूं और तुम मुसलमान हो। ये दो विचार, ये क्षुद्र से विचार, जिन्हें सिवाय सिखाने के इनका कोई मूल्य नहीं कि बचपन से आपके दिमाग में प्रोपेगेंडा किया गया है कि आप हिंदू हो और एक के दिमाग में किया गया है कि तुम मुसलमान हो। और ये बेवकूफियां उन्होंने सीख लीं। और इनके लिए वे सब मस्जिद भूल गए, कुरान भूल गए, गीता भूल गए और छाती में छुरे घोंपने लगे। हम ही जैसे लोग। हम कर सकते हैं अभी, यहीं कर सकते हैं। अभी जो आपके बगल में बैठा है उसी को आप छुरा घोंप सकते हैं। आपकी सब समझ खो जाएगी, आपकी सब समझ खो जाएगी। एक विचार भर खयाल में आ जाए कि हिंदू धर्म खतरे में है, तो मुसलमान, इसलाम खतरे में है, और फिर आपकी सब समझ खो जाएगी।
विचार समस्त महत्वपूर्ण हो गए हैं क्योंकि बहुत ममत्व हमने उनको दिया है। इस ममत्व को एकदम तोड़ देना जरूरी है। और तोड़ना कठिन नहीं है। क्योंकि

यह बिल्कुल काल्पनिक है। यह जंजीर कहीं है नहीं, केवल कल्पना में है।
विचार के प्रति ममत्व का त्याग जरूरी है।
पहली बातः विचार के प्रति अपरिग्रह का बोध।
दूसरी बातः विचार के प्रति ममत्व का त्याग।
और तीसरी बातः विचार के प्रति तटस्थ साक्षी की स्थिति।
सबसे महत्वपूर्ण सूत्र तीसरा ही है। दो उसकी भूमिकाएं हैं। दो उसकी प्राथमिक तैयारियां हैं।
तीसरा सूत्र हैः विचार के प्रति तटस्थ साक्षीभाव। जो व्यक्ति जितनी दूर तक विचारों के प्रति तटस्थ साक्षी के भाव को उपलब्ध होता है, उतनी ही दूर तक निर्विचार हो जाता है। अगर उसके साक्षी होने की स्थिति पूर्ण हो जाए तो विचार सब विदा हो जाएंगे। वह परिपूर्ण निर्विचार हो जाएगा, समाधि को उपलब्ध होगा। तटस्थ साक्षी से क्या अर्थ? नदी के किनारे कभी खड़े हुए हैं? कभी नदी के किनारे खड़े होकर देखा है? आप बैठे हैं या खड़े हैं और नदी बही जा रही है, आप सिर्फ देख रहे हैं। कभी नीचे बैठ कर आकाश में उड़ते हुए पक्षियों की कतार देखी है? आप बैठे हैं और पक्षियों की कतार उड़ी जा रही है। न उनमें कोई पक्षी आपका है, न आपका मित्र है, न कोई शत्रु है। न किसी को आप चाहते हैं, न किसी को नहीं चाहते हैं, मात्र देख रहे हैं, तटस्थ भाव से देख रहे हैं। पक्षी उड़े जाते हैं। इतनी ही तटस्थता से भीतर विचारों की जो पंक्तिबद्ध कतारें चल रही हैं उनका दर्शन आवश्यक है। बैठ जाएं और मात्र देखें, और विचार चले जा रहे हैं। कोई विचार आपका नहीं, कोई मित्र नहीं, कोई शत्रु नहीं। कोई विचार अच्छा नहीं, कोई विचार बुरा नहीं। मात्र विचारों के पक्षी उड़े जा रहे हैं और आप दूर बैठे चुपचाप उनको देख रहे हैं। कोई संबंध नहीं उनसे। जैसे रास्ता चल रहा हो, लोग चले जा रहे हों, आप किनारे खड़े देख रहे हों। विचारों का तटस्थ दर्शन, एक साक्षी, एक विटनेस की भांति, एक दूर खड़े हुए मनुष्य की भांति। कोई लगाव नहीं, कोई अच्छा नहीं, कोई बुरा नहीं, कोई अपना नहीं, कोई पराया नहीं। इसका निरंतर उपयोग, निरंतर इस बात की धारणा, निरंतर इस तटस्थ होने की स्थिति में खड़े होना क्रमशः विचारों को क्षीण करता जाता है। जैसे-जैसे आप तटस्थ होंगे, जैसे-जैसे आप दूर खड़े रह जाएंगे और विचारों का प्रवाह घूमता रहेगा, वैसे-वैसे आप हैरान होंगे विचारों के बीच में गेप बढ़ जाएगा, वे कम आएंगे, उनकी भीड़ कम होने लगेगी। हमने उनको बुलाया था इसलिए वे आए थे। वे आकस्मिक नहीं थे, हमारे आमंत्रण पर थे। वे अतिथि थे, हमने उन्हें बुलाया था और ठहराया था, और अपना माना था, इसलिए थे। जिस दिन हम अपना नहीं मानते, जिस दिन हम उनके प्रति उदासीन और उपेक्षा से भर गए, जिस दिन हम तटस्थ हो गए, उस दिन उनके रुके रहने का कोई भी कारण नहीं रह जाता। वे क्रमशः क्षीण होते जाते हैं और विलीन होते जाते हैं। अगर निरंतर जीवन में विचारों के प्रति तटस्थ, दूर खड़े होने का भाव साधा जाए, एक दिन आकस्मिक रूप से पाया जाता है कि विचार नहीं है और आप अकेले रह गए हैं, उस क्षण सत्ता होती है विचार का धुआं नहीं होता। सत्ता की ज्योति होती है विचार का धुआं नहीं होता। उस दिन शुद्धतम सत्ता शेष रह जाती है, विचार का कोई बादल नहीं होता। उस निर्विचार दशा में जाना जाता है वह जो है। उस क्षण पहचाना जाता है वह जिसे परमात्मा कहें, सत्य कहें, जीवन का मूलस्रोत कहें, कुछ और कहें। उस क्षण ही पहचाना जाता है वह जो आपके प्राणों का प्राण है। उस क्षण ही जाना जाता है वह जिसकी कोई मृत्यु नहीं है, जो अमृत है। उसके पूर्व कुछ भी नहीं जाना जाता है।
निर्विचार द्वार है सत्य का, निर्विचार स्थिति द्वार है परमात्मा का।
और निर्विचार होने के लिए सब भांति साक्षी हो जाना जरूरी है। साक्षी होना कठिन है। हम तो बहुत शीघ्रता से तादात्म्य कर लेते हैं, साक्षी नहीं रह जाते।
बंगाल में एक बहुत बड़े विद्वान और विचारक हुए। नाम सुना होगा, विद्यासागर। एक नाटक को देखने गए थे। समझदार इतने थे, बहुत विद्वान थे, बहुत किताबें लिखीं, बहुत भाष्य लिखे। और बंगाल में उन जैसा कोई विद्वान हुआ नहीं, पंडित हुआ नहीं। नाटक देखने गए थे, नाटक चलता था, और एक खलनायक उस नाटक में एक स्त्री को बुरी तरह परेशान किए जा रहा था। उसका पीछा किए जा

रहा था। विद्यासागर बड़े सज्जन व्यक्ति थे, उनकी बरदाश्त के बाहर हो गया। एक घड़ी ऐसी आई कि उस पात्र ने उस स्त्री को आखिर पकड़ लिया। विद्यासागर उठे, जूता निकाला और मार दिया। वह नाटक था, लेकिन वे भूल गए कि नाटक है। सामने ही बैठे थे, जूता निकाल कर मार दिया और कहा कि ठहर बदमाश! वह पात्र कहीं उनसे ज्यादा समझदार रहा होगा, उसने जूता उठा कर सिर से लगा लिया और उसने कहाः इससे बड़ा पुरस्कार मुझे कभी नहीं मिला। विद्यासागर जैसा आदमी भी नाटक को असली समझ ले यह मेरे अभिनय की खूबी हो गई।
हम तो नाटक को भी भूल जाते हैं कि वह नाटक है। जब कि जानना जरूरी यह है
कि जीवन नाटक है। और हम भूल जाते हैं कि नाटक नाटक है। नाटक जीवन मालूम होने लगता है। जब कि जरूरी यह है कि जीवन नाटक मालूम हो तब तो तटस्थ हो सकते हैं, तब तो दूर हो सकते हैं। विचार परदों पर चलता हुआ नाटक रह जाए तो ही आप दूर हो सकते हैं। लेकिन अभी तो हमारी स्थिति यह है कि नाटक भी बहुत जल्दी जीवन का हिस्सा हो जाता है, उसको भी हम समझ लेते हैं। नाटक में भी रोते हैं और हंसते हैं, वहां भी आंसू पोंछते हैं। तो जब परदे पर चलती हुई तसवीर हमारे प्राणों को ऐसा आच्छादित कर लेती हो, तो तटस्थ रहना बड़ा मुश्किल हो जाता है। लेकिन निरंतर-निरंतर बोध से, विवेक से, प्रज्ञापूर्वक स्मृति से, उस ध्यान से असंभव नहीं है।
धीरे-धीरे जीवन की छोटी-छोटी चीजों में तटस्थ होना सीखें। कभी एकाध घड़ी को रास्ते पर चलते हुए अचानक रुक जाएं और सिर्फ तटस्थ होकर देखने लगें कि यह क्या हो रहा है। कभी अपने परिवार में ही एक क्षण को तटस्थ हो जाएं बोधपूर्वक और देखें कि सब नाटक हो रहा है। कभी भी, कहीं भी थोड़ी देर के लिए एकदम रुक जाएं और देखें कि सब नाटक हो रहा है। ऐसे धीरे-धीरे आपके भीतर साक्षी होने की क्षमता विकसित होगी और तब विचार के तल पर आप साक्षी हो सकेंगे। जिस दिन विचार के तल पर आप साक्षी हो जाएंगे उसी दिन, उसी दिन एक अभिनव लोक, एक अभिनव, एक अभिनव द्वार आपके सामने खुल जाएगा। आप पहली दफा जीवन से परिचित होंगे। उसके पहले हम केवल मृत्यु से परिचित हैं।
मैंने पहले दिन मृत्यु के संबंध में आपसे कहा था कि हम करीब-करीब मुर्दा हैं, मरते जा रहे हैं। जीवन का हमें कोई पता नहीं है। जीवन हमारे भीतर बंद है, कैद है, द्वार पर ताला पड़ा है। उस ताले को तोड़े बिना भीतर जाना और जीवन को जानना मुश्किल है। वह ताला विचार का है, वह ताला विचार के साथ आइडेंटिटी, तादात्म्य का है। वह ताला विचार के साथ ममत्व का है। वह ताला विचार के साथ परिग्रह का है। अगर ये विचार सब भांति क्षीण हो जाएं, ये विचारों का दौर और ऊहापोह बंद हो जाए और चित्त शांत हो जाए, निस्तरंग, उस निस्तरंग चित्त में हम उस जीवन को जान सकते हैं।
प्रत्येक के भीतर अमृत बैठा है। और प्रत्येक के भीतर मूल जीवन, आदि जीवन की ऊर्जा छिपी है, लेकिन बहुत कम हैं जो उससे परिचित हो पाते हैं। लेकिन कोई भी, कोई भी प्रयास करे और आकांक्षा करे और श्रम करे और संकल्प करे तो परिचित हो सकता है।
इस संबंध में जो कुछ पूछने को हो, वह मैं संध्या आपसे बात करूंगा।
ये तीन विचार--अविचार और निर्विचार के संबंध में जो मैंने कहा है, उसे समझने की कोशिश करेंगे तो निश्चित ही कोई परिणाम हो सकता है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना है, उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद।